UNIVERSAL LIBRARY
OU_182267
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81 M67T   Accession No. PG H 1660

Author मिश्र भगीरथ

Title तुलसी - रसायन

This book should be returned on or before the date last marked below.

अध्ययन-माला
३

तुलसी-रसायन

गोस्वामी तुलसीदास के युग, जीवनी और कृतित्व का समीक्षा
तथा कृतियों से चुना हुआ संग्रह

डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पीएच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण : १९५७

ढाई रुपया

मुद्रक—रामआसरे ककड़
हिन्दी-साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' और 'महाकवि भूषण' के बाद अध्ययन-माला का यह तृतीय पुष्प आपके सामने है। विद्वान् लेखकों और गुणग्राही पाठकों के सक्रिय सहयोग से यह 'माला' इतनी लोकप्रिय एवं समादृत हुई है कि आगामी पुष्पों का चयन हम किंचित् अधिक सजग होकर करने को बाध्य हैं। प्रस्तुत योजना का मुख्य उद्देश्य हिन्दी के आधारस्तम्भ साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का खोजपूर्ण एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रकाशित कर साहित्य-पिपासुओं के लिए 'गागर में सागर' उपस्थित करना है।

भक्त-हृदय, लोक-संग्रही कवि तुलसी मर्यादापुरुषोत्तम राम के गुण-गायक हैं। वह राम जो—

"विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥"

यहाँ पर विप्र, धेनु, सुर और संत का हित, कदाचित् क्रमभेद होने पर भी, अर्थ धर्म, काम और मोक्ष का ही हित-साधन है जो मानव जीवन और मानव समाज के लिए समान रूप से सदा वांछनीय है। सुयोग्य एवं अधिकारी लेखक ने अपने विषय को स्पष्ट तथा हृदयग्राही बनाने का सफल प्रयास कर हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सफल योग दिया है। आशा है इस विषय के जिज्ञासु इसके द्वारा अपेक्षित लाभार्जन कर सकेंगे। हम ऐसी पुस्तक प्रकाशित कर संतोष अनुभव कर रहे हैं।

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
प्रकाशनाध्यक्ष

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

* * *

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

* * *

सरल कबित कीरति बिमल, सुनि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करैं बखान॥

भूमिका

प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट ए० स्मिथ (Vincent A. Smith) ने अपने सुविख्यात ग्रंथ अकबर महान् (Akbar, the great Moghul) नामक ग्रंथ में लिखा है[1] कि तुलसीदास अपने युग में भारतवर्ष के सबसे महान् व्यक्ति थे; अकबर से भी बढ़कर, इस बात में कि करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मन पर प्राप्त की हुई कवि की विजय, सम्राट् की एक या समस्त विजयों की अपेक्षा असंख्यगुनी अधिक चिरस्थायी और महत्वपूर्ण थी। भारतीय विद्वान् तथा हिन्दी-भाषी साहित्यिक और भक्त तो तुलसी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की प्रशंसात्मक धारणाएँ रखते ही[2] हैं, परन्तु, एक तटस्थ विदेशी इतिहासकार के इस प्रकार के मत को पढ़कर हम अधिक गौरव का अनुभव करते हैं और मन

---

1. It is a relief to turn from the triviality and impurity of most of the versifiers in Persian to the virile, pure work of a great Hindu—the tallest tree in the magic garden of mediaeval Hindu Poesy. His name will not be found in the Ain-a-Akbari, or in the pages of any muslim annalist, or in the books by European authors based on the narrotives of the Persian historians. Yet that Hindu was the greatest man of his age in india—greater even than Akbar himself,in as much as the conquest of the hearts and minds of millions of men and women affected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than any or all of the victories gained in war by the monarch.

V. A. Smith—Akbar, the Great Moghul, 2nd Ed., P. 417

२. (अ) आनन्दकानने कश्चित् तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥
मधुसूदन सरस्वती

स्मिथ को भी एक पत्र में लिखा था कि मैं अब भी सोचता हूँ कि तुलसीदास समस्त भारतीय साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। अन्य विदेशी विद्वानों ने भी खुलकर उनकी प्रशंसा की है[२]। यह पूर्ण रूप से स्पष्ट तभी हो

There is... ... ... when occasion requires it sententious aphoristic method of dealing with narrative, which teems with similes drawn, not from the traditions of the schools, but from nature herself and better than Kalidasa at his best.

—Encyclopaedia of Religion and Ethics, p. 471, 1921 Edition.

२. (क) रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्स, (मेलवर्न, इंगलैंड) ने लिखा है :—
वह हमारे केवल प्रशंसा के पात्र नहीं, प्रेम के भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी साहित्य में ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासाद से लेकर एक निर्धन की कुटिया तक इतना अधिक प्रसार हो।

—कल्याण, रामायणांक, पृष्ठ ३४२

(ख) डा० 'के' ने अपने ग्रन्थ हिन्दी लिट्रेचर में लिखा है :—
हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान बिल्कुल सर्वोच्च है और उनकी रामायण न केवल भारत में ही, वरन् समस्त संसार में सुविख्यात है। (पृष्ठ ४७)

(ग) डा० जे० एम० मैकफ्री ने अपने ग्रन्थ 'दि रामायण आफ़् तुलसीदास और दि बाइबिल आफ़् नार्दर्न इंडिया' की भूमिका में लिखा है :—
गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में भक्ति का जो उच्च और विशुद्ध भाव आता है उससे बढ़कर उच्च भाव और कहीं नहीं दिखलाई देता।

(ग) इसी प्रकार के प्रशंसा पूर्ण भाव श्री नटेशन के ग्रन्थ 'रामानन्द टु रामतीर्थ' प्राउज़ के अनुवाद, कार्पेंटर के 'थियोलाजी आव् तुलसीदास,' तथा वरान्निकोव् के रामचरित मानस के रूसी पद्यानुवाद की भूमिका में देखने को मिलते हैं। वरान्निकोव् का रूसी भाषा में मानस का पद्यानुवाद अद्भुत महत्व रखता है। अनुवाद की भूमिका में तुलसी के महत्व का मूल्यांकन हैं। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि :—

सकता है जब ऐतिहासिक दृष्टि से तुलसी को समकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में देखा जाय। तुलसी की वाणी अपने समय में महत्वपूर्ण थी, यह उस समय के और परवर्ती साहित्यकारों की उक्तियों और उन पर पड़े प्रभाव से प्रगट होता है। वे तब से अब तक भारतीय साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं, यह उनके रामचरित मानस के देशव्यापी प्रचार, पाठ एवं विभिन्न भाषाओं में किए गए अनुवादों से स्पष्ट हो जाता है। ग्राउज़महोदय ने बहुत पहले रामचरित मानस का बड़ा सुन्दर अंग्रेजी में अनुवाद किया था और अब तो रूसी भाषा में भी बरान्निकोव् ने इसका पद्यानुवाद, एक विस्तृत भूमिका के साथ किया है। यह सब उनके महत्व और गौरव को स्पष्ट करता है।

तुलसीदास जी पर लिखे गए हिन्दी ग्रंथों की भी एक लम्बी सूची हैं जिनमें से प्रमुख १. रामचंद्र शुक्ल कृत, तुलसीदास, २. श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल कृत, गोस्वामी तुलसीदास, ३. बलदेव प्रसाद मिश्र कृत तुलसी-दर्शन, ४. रामनरेश त्रिपाठी-कृत, तुलसीदास और उनकी कविता, ५. माताप्रसाद गुप्त-कृत, तुलसीदास, ६. चन्द्रबली पांडेय-कृत, तुलसीदास ७. व्यौहार राजेन्द्र-सिंह-कृत गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना, ८. रामबहोरी शुक्ल-कृत तुलसीदास ९. कामिल बुल्के कृत रामकथा : उद्भव और विकास १० परशुराम चतुर्वेदी-कृत मानस की रामकथा तथा ११. राजपति दीक्षित कृत तुलसीदास और उनका युग, हैं। इन समस्त ग्रन्थों की अपनी अपनी विशेषतायें हैं। जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विशेष सामग्री देने वाली कृति माता प्रसाद गुप्त कृत

भारतीयों के लिए यह (रामचरित मानस) एक धर्म पुस्तक एक प्रकार की बाइबिल ही बन गई और इसे जो लोकप्रियता, प्रेम और आदर प्राप्त हुआ, वह इसके पहले अन्य किसी भी भारतीय ग्रन्थ को कभी प्राप्त नहीं हुआ। उत्तर भारत में तो इससे अधिक लोकप्रिय और कोई ग्रन्थ नहीं। इसके धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सामाजिक विचारों ने सदियों से भारतीयों के मत-निर्माण में गहरा असर डाला है और आज भी डाल रहे हैं। एक अमर साहित्यिक कृति के रूप में रामायण भारतीय काव्य का एक अनुपम रत्न है। इसकी रचना भारतीय काव्य-परम्परा की भौतिक और गम्भीर प्रणाली के अनुरूप ही हुई है, जो युरोपीय प्रणाली से सर्वथा भिन्न है।

नया समाज, नव० १९५२, डा० महादेव साहा का लेख

तुलसीदास है और इस सम्बन्ध में विशेष दृष्टिकोण प्रदान करने वाले ग्रंथ राम नरेश त्रिपाठी कृत तुलसीदास और उनकी कविता तथा चन्द्रबली पांडेय और रामबहोरी शुक्ल के ग्रंथ है। माताप्रसाद गुप्त ने समस्त सामग्री को सामने रख कर कोई निर्णय नहीं दिया, त्रिपाठी जी का आग्रह सोरों में तुलसी की जन्मभूमि के प्रति तथा रामबहोरी जी का राजापुर और चन्द्रबली जी का अयोध्या के लिये है। बलदेव प्रसाद मिश्र का तुलसीदर्शन गोस्वामी जी के दार्शनिक मत का स्पष्टीकरण करने वाला ग्रन्थ है और समन्वय-साधना में तुलसीदास के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को प्रगट किया गया है। कामिल बुल्के के ग्रन्थ में रामकथा के स्वरूप और विस्तार का अध्ययन हुआ है और इस प्रसंग में बलदेव प्रसाद मिश्र की 'मानस में रामकथा' और परशुराम चतुर्वेदी की 'मानस की रामकथा' पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। काव्य की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल की कृति रामनरेश त्रिपाठी और चन्द्रबली पांडेय के ग्रन्थ अपनी अपनी विशेषताओं से युक्त हैं, पर शुक्ल जी के ग्रंथ के समान मार्मिक विश्लेषण अभी और अधिक होने की आवश्यकता है। राजपति दीक्षित ने समकालीन परिस्थितियों और धार्मिक भावना का विशेष रूप से अध्ययन किया है। अतः इन ग्रंथों में अपने-अपने दृष्टिकोण से एक या अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

तुलसीदास के सम्बन्ध में एक ही प्रसंग पर कई दृष्टियों से अध्ययन किया जा सकता है, साथ ही अब भी समस्त क्षेत्र पूर्णरूप से खोजे नहीं जा सके। वास्तव में आज हमारी आवश्यकता है गंभीर चिन्तन और अध्ययन की और उसके फलस्वरूप प्रौढ़ और निश्चित विचार देने की। एक ओर हमारा विद्यार्थी-समाज है और दूसरी ओर विदेशी तथा विप्रान्तीय विद्वन्मंडली, जो हमारे कवियों के सम्बन्ध में निश्चित और यथार्थ विचारों की अपेक्षा रखती हैं। अतएव प्रस्तुत ग्रंथ, 'तुलसी रसायन' में विभिन्न प्रसंगों पर कुछ निश्चित बातें कहने का प्रयत्न किया गया है। निश्चय ही उनका आधार पूर्ववर्ती विद्वानों की कृतियाँ, व्याख्याएँ और दृष्टिकोण हैं और गोस्वामी के ही शब्दों में :—

अति अपार जे सरितवर जौं नृप सेतु कराहि।
चढ़ि पिपीलिकउ परमलघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं।

वाली ही दशा मेरी है। अतः मैं सभी विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ।

'तुलसी रसायन' में समकालीन परिस्थिति के प्रकाश में गोस्वामी जी के

महत्व को देखने का प्रयास किया गया है। परिस्थितियों का चित्रण अन्यत्र भी मिलता है, पर इसमें उनके प्रकाश में निश्चित निष्कर्षों पर पहुँचने की चेष्टा इसमें है। ऐसा ही प्रत्यन जीवनी के प्रसंग में भी है। तुलसी के काव्य का अलंकार, रस, भाव, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से ऊपर कहे गए ग्रंथों तथा अन्य लेखों में अध्ययन किया जा चुका है अतः उसको पुनः प्रस्तुत न करके केवल तुलसी की कला-सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का परिचय यहाँ दिया गया है और यही दृष्टि तुलसी के 'दार्शनिक विचार' शीर्षक प्रसंग में भी है जहाँ संक्षेप में उनकी धारणा को स्पष्ट रूप से रखा गया है। तुलसीदास की कृतियों का सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन अभी तक नहीं हुआ था, अतः इस अध्ययन में तीन चार शीर्षकों के अन्तर्गत उनके राज्यादर्श, समाजवादी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रगट किया गया। ये समस्त प्रसंग गोस्वामी जी के कृतित्व का मूल्य और उपयोगिता आज की दृष्टि से आँकते और स्पष्ट करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युग को स्वच्छन्दता की भावना प्रदान की। राजनीतिक दासता के होते हुए भी, किस प्रकार स्त्री-पुरुष आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्वच्छन्दता प्राप्त कर सकते हैं, यह उनके भक्ति के संदेश और राम के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट है। संसार को भ्रम और अनित्य कह कर उन्होंने हमारी ऐहिक आकांक्षा-सम्बन्धी परवशता से हमें मुक्ति प्रदान की और भक्ति सर्वजन सुलभ होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ है, यह बताकर हमारी मानसिक दासता को दूर कर दिया। जिस स्वच्छन्दता को आज हम पाया हुआ कहते हैं, वह बाह्य है। इसके साथ यदि हमारी आन्तरिक परतन्त्रता भी मिट जाय तो हम वास्तव में स्वतंत्र कहे जा सकते हैं और तुलसी तथा अन्य संत कवियों ने इसी का द्वार हमारे सामने उस युग में खोला था, जबकि ऐसी बातों के लिए ज़बान खोलना भी संभव न था।

तुलसी का दूसरा रचनात्मक कार्य है, पूर्ण जीवन की कल्पना। उन्होंने राम के चरित्र-चित्रण में एक सर्वांगीण सम्पन्न जीवन का चित्र अंकित किया है। साथ ही यह भी बताया है कि जीवन को हमें किस रूप में देखना चाहिए। मानव जीवन, कर्म क्षेत्र है। इसमें त्याग और बलिदान के अवसर बहुत कम लोगों को प्राप्त होते हैं। राम के जीवन में इसी कर्मठ व्यक्तित्व का प्रकाशन है जब वे कहते हैं :—

जो न जाँहु बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोंहि मूढ़ समाजा॥

जीवन की पूर्णता का अनुभव और उसके प्रति कर्तव्य-भावना जाग्रत करने वाला आधुनिक युग के लिए तुलसी का संदेश महत्वपूर्ण है। उनकी वाणी आज भी हमारे लिए प्रेरक है। अतः प्रस्तुत ग्रंथ में उनकी विविध रचनाओं के कुछ चुने हुए छन्द अन्त में संकलित कर दिए गए हैं। वहीं वास्तव में 'तुलसी रसायन' है, शेष सब उसकी भूमिका-मात्र। आशा है कि 'दारु विचारु न करिहि कोउ समुझिहि मलय प्रसंग।'

दीपावली, सं० २०१० वि०
लखनऊ

भगीरथ मिश्र

विषयानुक्रम

जीवनी-खंड

१. तुलसीदास : युग—समकालीन परिस्थिति–पृष्ठ ३; राजनीतिक स्थिति–पृष्ठ ४; सामाजिक स्थिति–पृष्ठ ६; धार्मिक स्थिति (पूर्ववर्ती धार्मिक परम्पराएँ)–पृष्ठ ११; साहित्यिक स्थिति–पृष्ठ १६ ... १—१६

२. जीवनी और व्यक्तित्व—*अन्तस्साक्ष्य का आधार* : परिवार–पृष्ठ २०; नाम–पृष्ठ २१; गुरु–पृष्ठ २२; जाति–पृष्ठ २३; बाल्यावस्था–पृष्ठ २४; युवावस्था–पृष्ठ २६; प्रकृति और स्वभाव–पृष्ठ २६; वृद्धावस्था और अवसान काल–पृष्ठ २७; *बहिस्साक्ष्य*— पृष्ठ २८; भक्तमाल–पृष्ठ २६; वार्ता–पृष्ठ ३०; वेणी माधवदास कृत 'गोसाईंचरित'–पृष्ठ ३०; मूल गोसाईं चरित–पृष्ठ ३१; तुलसी चरित–पृष्ठ ३४; घट रामायण–पृष्ठ ३५; काशी की सामग्री–पृष्ठ ३५; अयोध्या की सामग्री–पृष्ठ ३६; राजापुर की सामग्री–पृष्ठ ३६; सोरों की सामग्री–पृष्ठ ३७; जीवनी की रूपरेखा–पृष्ठ ३६; जन्म तिथि–पृष्ठ ३६; मृत्यु तिथि–पृष्ठ ४० । ... २०—४०

रचना-खंड

३. प्रामाणिक रचनाएँ ४३—४६

४. संक्षिप्त परिचय—रामलला नहछू–पृष्ठ ४७; वैराग्य संदीपिनी–पृष्ठ ४७; बरवै रामायण–पृष्ठ ४८; पार्वती मंगल–पृष्ठ ४६; जानकी मंगल–पृष्ठ ५०; रामाज्ञा प्रश्न–पृष्ठ ५०; दोहावली–पृष्ठ ५२; कवितावली–पृष्ठ ५३; गीतावली–पृष्ठ ५५; कृष्ण गीतावली–पृष्ठ ५६; विनय पत्रिका–पृष्ठ ५७; रामचरित मानस–पृष्ठ ५६ । ... ४७—६१

आलोचना-खंड

५. राम-काव्य का विकास और रामचरित मानस			६५—७३
६. काव्यकला	...	...	७४—८६
७. तुलसी का राज्यादर्श	...	...	८७—९६
८. रामराज्य की धारणा	...	...	९७—१०१
९. लोक-जीवन और संस्कृति	...	...	१०२—११०
१०. दार्शनिक विचार	...	...	१११—१२२
११. उपसंहार	...	...	१२३—१२६

संग्रह-खंड

१२. कवितावली	...	...	१२९—१३६
१३. बरवै रामायण	...	...	१३७—१३७
१४. पार्वती मंगल	...	...	१३८—१३८
१५. दोहावली	...	...	१३९—१४३
१६. गीतावली	...	...	१४४—१५२
१७. विनय पत्रिका	...	...	१५३—१५९
१८. रामचरितमानस	...	...	१६०—१९८

जीवनी खण्ड

प्रामाणिक रचनायें

गोस्वामी तुलीदास ने अपने किसी ग्रंथ में अपनी अन्य रचनाओं के संबंध में उल्लेख नहीं किया। अतएव रचना-संबंधी अंतस्साक्ष्य इस प्रकार का अलभ्य है। परन्तु तुलसी की प्रायः समस्त रचनाओं में कहीं न कहीं अथवा बार बार प्रत्येक छन्द में उनके नाम की छाप मिलती है जो उन्हें तुलसी-द्वारा विरचित होने का प्रमाण देती है। फिर भी विभिन्न लेखकों और विद्वानों-द्वारा तुलसी के रचना-संबंधी उल्लेखों में कुछ मतभेद अवश्य मिलता है जिसका प्रमुख कारण उनके ग्रंथों के किसी खंड-विशेष को स्वतन्त्र रचना के रूप में मान लेने का भ्रम, या उनके नाम पर किसी अन्य की कृतियों का सम्मिलित हो जाना जान पड़ता है। इस बात को हम रचना-संबंधी विभिन्न उल्लेखों में देखेंगे।

बाबा वेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईं चरित' में कालक्रमानुसार नीचे लिखे ग्रंथों का उल्लेख मिलता है :—

रामगीतावली, तथा कवितावली के कुछ छन्द (सं० १६२८ से ३१ तक), कृष्णगीतावली (सं० १६२८), रामचरितमानस (सं० १६३१), दोहावली (सं० १६४०), सतसई और रामविनयावली (विनयपत्रिका), सं० १६४२ रामललानहछू, पार्वतीमंगल और जानकी मंगल (सं० १६४३), बाहुक (सं० १६६६), वैराग्य संदीपिनी, रामाज्ञा प्रश्न और बरवैरामायण (सं० १६६६)। इन तेरह ग्रंथों में कवितावली का उल्लेख नहीं है; बाहुक का उल्लेख अवश्य है जो कि कवितावली के साथ ही प्रायः संलग्न मिलता है। सं० १६२८ में मिथिला-यात्रा के समय सीतावट पर तीन कवित्तों की रचना का उल्लेख इसमें हुआ है। इससे यह संकेत मिलता है कि कवितावली एक समय और स्थान पर लिखी रचना नहीं; वरन् विभिन्न स्थानों और समयों में रचित कवित्तों का संग्रह है।

शिवसिंह सेंगर के ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में उल्लेख इस प्रकार है— "इनके बनाये ग्रंथों की ठीक ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रंथ हमने देखे अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका ज़िक्र किया जाता है। प्रथम ४६ कांड रामायण बनाया है, इस तफसील से १ चौथाई रामायण ७ कांड

२ कवितावली ७ कांड, ३ गीतावली ७ कांड, ४ छन्दावली ७ कांड, ४ बरवै ७ कांड, ६ दोहावली ७ कांड, ७ कुंडलिया ७ कांड औ सेवाय इन ४६ कांड के १ सतशई २ रामसलाका ३ संकठ मोचन ४ हनुमत् बाहुक ५ कृष्णगीतावली ६ जानकी मगल ७ पारवती मंगल ८ करखा छन्द ६ रोला छन्द १० झूलना छदन इत्यादि और भी ग्रंथ बनाये हैं अन्त में विनयपत्रिका महाविचित्र मुक्तिरूप प्रज्ञानंदसागर ग्रंथ बनाया है।"[1] इस विवरण के अनुसार ७ रामायणें और ११ अन्य ग्रंथ मिलकर १८ कुल ग्रंथ तुलसी-रचित है। बाबा वेणीमाधवदास की सूची से इसमें छन्दावली, कुंडलियारामायण, रामसालाका, संकटमोचन, करखा छन्द, रोला छन्द, झूलना छन्द अधिक तथा बाहुक और वैराग्य संदीपिनी कम हैं।

डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन ने इंडियन एण्टिक्वरी,[2] में प्रकाशित अपने लेख 'नोट्स आन तुलसीदास' में नीचे लिखे २१ ग्रंथों का उल्लेख किया है—

रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, रामसतसई, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्यसंदीपिनी, रामललानहछु, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न या राम सगुनावली, संकटमोचन, विनयपत्रिका, बाहुक, रामशलाका, कुंडलिया रामायण, करखा रामायण, रोला रामायण, झूलना, श्रीकृष्ण गीतावली। खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित मानस की भूमिका में भी उन्होंने इन्हीं ग्रंथों का उल्लेख किया है; केवल ५ ग्रंथों का एक साथ उल्लेख तुलसी पंचरत्न नाम से कर दिया है। परन्तु 'एनसाइक्लोपीडिया आफ़् रिलीजन एण्ड एथिक्स' में उन्होंने अधिक मान्य १२ ग्रंथों की ही सूची दी है[3] जिसे दो भागों बड़े ग्रंथ, छोटे ग्रंथ में उल्लिखित किया है। ग्रंथ ये हैं :—

बड़े ग्रन्थ—कवितावली, दोहावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका और रामचरितमानस।

छोटे ग्रन्थ—रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, बरवै रामायण, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, रामाज्ञा।

---

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ४२६

२. Indian Antiquary, Vol XXII 1893 p. 122.

३. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. 12. P. 470.

डॉक्टर ग्रीयर्सन ने इन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक-रूप से स्वीकार किया।

'बंगवासी' के मैनेजर की ओर से उपहार-स्वरूप ग्राहकों को १७ ग्रंथ भेंट किये गये थे जिसमें मानस के अतिरिक्त १६ अन्य रामायणों के भेंट करने का उल्लेख हुआ था। इन ग्रंथों की सूची यह है[1]—

१. मानसरामायण, २. श्रीराम नहछू, ३. वैराग्य संदीपिनी, ४. बरवा रामायण, ५. पार्वती मंगल, ६. जानकी मंगल, ७. श्रीराम गीतावली, ८. श्रीकृष्ण गीतावली, ९. दोहावली, १०. श्री रामाज्ञा प्रश्न, ११. कवित्त रामायण, १२. कलिधर्माधर्मनिरूपण, १३. विनय पत्रिका, १४. छप्पय रामायण, १५. हनुमान बाहुक, १६. हनुमान चालीसा, १७. संकटमोचन। इस सूची में तीन ये ग्रंथ और जोड़े गये—कुंडलिया रामायण, रामायण छन्दावली, तुलसी सतसई। इस प्रकार इस सूची के अनुसार कुल २० ग्रन्थ हुए। इस सूची में ग्रीयर्सन की सूची से तीन नये नाम हैं। कलिधर्माधर्म-निरूपण, हनुमान चालीसा, रामायण छन्दावली तथा चार कम नाम हैं—रामशलाका, करखा रामायण, रोला रामायण, और झूलना रामायण। समस्त नये ग्रन्थों को जोड़ने पर कुल २४ ग्रन्थ हुए। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक मिश्रबन्धुओं ने इस सूची में 'पदावली रामायण' नामक एक और ग्रंथ जोड़ दिया है और इस प्रकार समस्त ग्रन्थों की रचना २५ हो जाती है। इनमें से मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी नवरत्न'[2] में नीचे लिखे १२ ग्रंथों को प्रामाणिक माना है—

१. रामचरितमानस, २. कवितावली, ३. गीतावली, ४. जानकी मंगल, कृष्ण गीतावली, ६. हनुमान बाहुक, ७. हनुमान चालीसा, ८. रामशलाका, ९. राम सतसई, १०. विनयपत्रिका, ११. कलिधर्माधर्म निरूपण, १२. दोहावली।

मिश्र बन्धुओं की दृष्टि से अप्रमाणिक ग्रंथ ये हैं—

१. कड़खा रामायण, २. कुंडलिया रामायण, ३. छप्पय रामायण, ४. पदावली रामायण, ५. रामाज्ञा, ६, रामलला नहछू, ७. पार्वती मंगल, ८. वैराग्य संदीपनी, ९. बरवै रामायण, १०. संकटमोचन, ११. छन्दावली रामायण, १२. रोला रामायण, १३. झूलना रामायण।

---

१ देखिए हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा) प्रथम संस्करण, पृ० ३८४।

२ हिन्दी नवरत्न, चतुर्थ संस्करण, पृ० ८१-१०१।

मिश्रबन्धुओं के मतानुसार इस प्रकार रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, पार्वतीमंगल, बरवै और वैराग्य संदीपिनी भी अप्रमाणित हैं। परन्तु प्राचीन टीकाकारों और परम्परा के अनुसार मान्य ग्रन्थ ग्रीयर्सन-द्वारा "एनसाइक्लोपीडिया आफ़् रिलीजन एण्ड एथिक्स" में उल्लिखित १२ ग्रन्थ ही है इन्हें ही बंदन पाठक, महादेव प्रसाद, रामगुलाम द्विवेदी प्रभृति विद्वान् रामायणी भी मानते हैं। पंडित रामगुलाम द्विवेदी का इस सम्बन्ध में एक छन्द है, जिसमें तुलसी की समस्त रचनाओं का उल्लेख हुआ है।

रामलला नहछू स्यों विराग संदीपिनी हूँ,
बरवै बनाइ बिरमाई मति साईं की।
पारबती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाईं की।
दोहा औ कबित्त गीतछन्द कृष्ण राम कथा,
रामायन बिनै माँहि बात सब ठाईं की।
जग में सोहानी जगदीश हू के मनमानी,
संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की॥

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में तुलसी के नाम से लगभग ३५ ग्रन्थ मिलते हैं जो एक गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा ही नहीं, वरन् अन्य तुलसी नामधारी व्यक्तियों द्वारा भी रचे गये। तुलसी ग्रंथावली के दोनों खंडों में विद्वानों द्वारा १२ ग्रंथ ही तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में स्वीकार किये गये हैं, जो निम्नांकित हैं—

१. रामचरितमानस, २. रामलला नहछू, ३. वैराग्य संदीपिनी, ४. बरवै रामायण, ५. पार्वतीमंगल ६. जानकी मंगल, ७. रामाज्ञा प्रश्न, ८. दोहावली, ९. कवितावली, १०. गीतावली, ११. श्रीकृष्ण गीतावली, १२. विनयपत्रिका। यही ग्रंथ आज तक विद्वानों और हिंदी साहित्य के इतिहासकारों-द्वारा मान्य हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. *रामलला नहछू*—'मूलगोसाईं चरित' के अनुसार नहछू की रचना मिथिला में हुई थी। 'नहछू' में २० सोहर छन्द हैं जो विवाह के अवसर पर गाने के लिए बनाये गये हैं। यद्यपि राम विवाह के समय जनकपुरी में थे अयोध्या में नहीं, फिर भी इसमें अयोध्या में राम के वैवाहिक नहछू का वर्णन किया गया है। जिस पर शंका उठ खड़ी होती है। कुछ लोगों का विचार है कि यह विवाह का नहीं, यज्ञोपवीत के अवसर का नहछू है। उस समय भी लगभग वही समस्त प्रथाएँ बरती जाती हैं। वास्तव में यह ऐतिहासिक प्रबंध काव्य के रूप में नहीं, वरन् व्यावहारिक सांस्कृतिक गीत के रूप में निर्मित हुआ है। राम का चरित्र यहाँ पर निमित्त मात्र है। इस अवसर पर संभवतः अन्य भद्दे और फूहड़ किस्म के नहछू प्रचलित रहे होंगे और तुलसी ने एक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के हेतु नहछू की रचना की। राम एक सामान्य दूलह के प्रतीक हैं, कौशल्या, दूलह की माता का प्रतीक हैं और इस प्रकार प्रथा और सांस्कृतिक कृत्य के निर्वाह के हेतु राम-कथा का काल्पनिक माध्यम स्वीकार किया गया है। इसमें आये हुए शृंगारिक चित्र दो बातें स्पष्ट करते हैं—पहली बात तो यह है कि तुलसी की प्रारंभिक रचना है और दूसरी यह कि इस अवसर पर प्रदर्शित प्रचलित रसिकता की अवहेलना इस ग्रंथ में नहीं की गई है। तुलसी यहाँ मर्यादावादी न होकर यथातथ्यवादी रूप में अधिक प्रगट हुए हैं। इसी कारण से कुछ लोग इसे तुलसीकृत होने में संदेह भी प्रगट करते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं। यह सांस्कृतिक कृत्य के अनुकूल लोक-प्रचलित रसिकता-प्रवाह से मेल रखता हुआ यथार्थवादी काव्य है और तुलसी की ही सरस और लोकगीत-ढांचे में ढली हुई अवधी रचना है। चित्र और भाव बड़े ही स्पष्ट और मनोग्राही है। फिर भी उनकी अन्य रचनाओं से यह निम्न स्तर की है।

२. *वैराग्य संदीपिनी*—वैराग्य संदीपिनी की रचना विद्वानों[1] ने दोहावली के पहले मानी है, क्योंकि इसमें कुछ दोहे वही हैं जो दोहावली में भी

१. गोस्वामी तुलसीदास—(डा० श्यामसुन्दर दास और डा०बड़थ्वाल कृत)। पृ० ६२

संकलित है और प्रौढ़ता की दृष्टि से प्रारंभिक रचना ही जान पड़ती है। इसे चार प्रकरणों में विभक्त किया गया है—१. मंगलाचरण, २. संत-स्वभाव वर्णन, ३. संत-महिमा वर्णन, ४. शांति वर्णन। इसके अंतर्गत, सदाचार, सतसंग, वैराग्य आदि के द्वारा भक्ति भाव को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है। ग्रंथ में कुछ दोहे दोहावली के हैं तथा कुछ ही अन्य है जो तुलसीदास के काव्य की विशेषता रखते हैं, शेष तो निर्गुण संत काव्य की उपदेशात्मकता अपनाये हैं; गोस्वामी जी के कथन की सरसता और उक्तिवैचित्र्य इनमें देखने को नहीं मिलती। फिर भी समस्त ढाँचे को देखने से उनकी ही रचना प्रतीत होती है। यह वैरागियों और साधु सन्यासियों के लिए लिखी गई कृति है जिसमें अहंभाव के त्याग, संतों की संगति और वैराग्य से भक्ति प्राप्त करने का उपदेश है। इससे मिलते जुलते दोहे संत तुरसीदास निरंजनी के भी हैं।

३. *बरवै रामायण*—बरवै रामायण स्वतंत्र ग्रंथ-रूप में लिखी रचना नहीं है; वरन् समय समय पर लिखे गये बरवै छन्दो का संकलन है। वेणीमाधवदास के अनुसार बरवै रचना सं० १६६६ में की गई—

कवि रहीम बरवै रचे पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुन्दर छंद में रचना किए प्रकास॥

वैसे भी यह प्रचलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रचित बरवै की एक पंक्ति पर मुग्ध होकर इस ललित छन्द में अपने बरवै नायिका भेद की रचना की थी और गोस्वामी तुलसीदास जी को भी अवधी के इस ललित छन्द में रचना करने को कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुलसी ने बरवै छन्दों में रचना की थी। बरवै अवधी का अत्यंत मोहक छन्द है। भाव और स्वर के असीम विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अवकाश है। अंतिम गुरु लघु का क्रम, भाव और स्वर-विस्तार की असीमता को समेटे है और मध्य के लघुतावाची अवधी के शब्द लोचपूर्ण लालित्य के सजीव रूप हैं।

बरवै रामायण में कुल मिलाकर ६६ छंद हैं जो सात कांडों में विभक्त हैं। बालकांड अयोध्या कांड के छन्द रूप, चरित और भाव चित्रण की सूक्ष्मविशेषता लिए हुए हैं। इन छन्दों में गोस्वामी तुलसीदास ने छोटे-छोटे परन्तु ललित अलंकारों का सुष्ठु मनोहारी प्रयोग किया है। सीता के सौन्दर्य, राय के चरित्र, शील, स्वभाव का वर्णन, सीता का विरह वर्णन, सेनावर्णन आदि अद्भुत आलं-

कारिक सौन्दर्य से पूर्ण हैं। उत्तरकांड के २७ बरवै छन्दों में वैराग्य, दैन्य, शांत आदि भावों से परिपूर्ण भक्ति का वर्णन है और इस योजना में बरवै, कवितावली की पद्धति पर ही संकलित रचना है। इसमें कोई प्रबंध नहीं, और न कथानक योजना ही है। ये बरवै छन्द मुक्तकरूप में हैं; परन्तु कलात्मक सौन्दर्य की बारीकी इन्हें काव्य प्रेमी जनों का कण्ठहार बनाये हैं। प्रत्येक बरवै मणि-मुक्ता के समान आभामय हैं और पाठक की यह इच्छा होती है कि ऐसे ही और छन्दों का आनंद वे प्राप्त करें। इसी इच्छा का ही परिणाम, यह विश्वास जान पड़ता है कि तुलसी का यह ग्रंथ वृहद् रूप में रहा होगा। प्राप्त छन्द उसी वृहद् मणिमाला के बिखरे मणि हैं जो इस रूप में संकलित हुए हैं।

४. *पार्वतीमंगल*—यह, शिव-पार्वती आख्यान के अंतर्गत पार्वतीपरिणय प्रसंग के आधार पर लिखा गया खंड काव्य है। कथानक का विकास सुसंगठित और सौष्ठवपूर्ण है और यह मानस में वर्णित शिवकथा से भिन्न है। मानस की शिवकथा का आधार शिवपुराण है जब कि 'पार्वतीमंगल' का आधार कुमार संभव है। कुमारसंभव की कथा का सुन्दर सुसंगठित रूप पार्वतीमंगल में प्रस्तुत किया गया है। मानस के अनुसार पार्वतीमंगल की रचनातिथि का संकेत कवि ने दिया है—

जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउं मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु॥[1]

यह प्रारंभ में दिया गया है। अतः सिद्ध है कि जय संवत् में फागुन सुदी ५ गुरुवार को अश्विनी नक्षत्र में पार्वती मंगल की रचना हुई थी। जय संवत्, सं० १६४२ से प्रारंभ होकर सं० १६४३ में समाप्त होता है। संवत् १६४२ में फागुन सुदी ५ रविवार को पड़ती है, गुरुवार को नहीं। संवत् १६४३ में यह गुरुवार को पड़ती है।[2] अतः जान पड़ता है कि समस्त १६४३ संवत् जय संवत् न होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ने कुछ अंशों में होने के कारण अंतिम खंड का उल्लेख भी जय संवत् के अंतर्गत किया है। अतः पार्वती मंगल का रचना काल सं० १६४३ वि० मानना चाहिए।

---

१. पार्वतीमंगल, छं० ५।

२. देखिये डॉ० माता प्रसाद गुप्त : तुलसीदास, प्रथम संस्करण, पृ० २३२-३३। तथा—Indian Antiquary, vol. XXII (1893) P. 15-16 पर डॉ० ग्रीयर्सन का लेख।

पार्वतीमंगल में मंगल और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया है और इसमें पार्वती के जन्मादि का संक्षेप में, पर तपस्या और विवाह का वर्णन विस्तार से किया है। विशेष रोचक और निखरे हुए प्रसंग पार्वती-बटु संवाद, वैवाहिक सांस्कृतिक कृत्य हैं जो बड़े ही सजीव और मार्मिक हैं। पुस्तक के उपसंहार तथा समस्त वर्णन से यह जान पड़ता है कि यह मंगल उन्होंने महिलाओं के गीत या पठनार्थ लिखा है, जैसा कि अंतिम पक्तियों-द्वारा स्पष्ट है—

प्रेमपाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।
मृगनयनि विधुवदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।
उर धरहु जुवती जन विलोकि तिलोक सोभा सार सो।
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं॥

अतः तुलसी की यह कृति मांगलिक है और इसका सांस्कृतिक महत्व है।

५. *जानकीमंगल*—'जानकीमंगल' भी ठीक इसी प्रकार का ग्रंथ है। छन्द, भाषा आदि की दृष्टि से भी यह पार्वती मंगल की शैली पर ही लिखा गया है। उद्देश्य और शैली में साम्य होने से यह कहा जा सकता है कि दोनों के रचना काल में भी विशेष अंतर नहीं। बाबा वेणीमाधव दास के अनुसार गोस्वामी जी ने बाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि सं० १६४१ में की थी। उसी के बाद ही इसकी रचना जान पड़ती है; क्योंकि जानकी मंगल के कथानक पर बाल्मीकि रामायण के कथानक का प्रभाव है। इसमें परशुराम का आगमन विवाहोपरान्त बारात के जनकपुरी से लौटने पर मार्ग में होता है। तथा परशुराम और राम लक्ष्मण संवाद अत्यंत संक्षिप्त है और केवल चार पंक्तियों में समाप्त हो जाता है। पुष्पवाटिका का प्रसंग भी इसमें नहीं। इस मंगल में प्रमुख उद्देश्य विस्तार पूर्वक वैवाहिक मांगलिक कृत्यों का वर्णन है। इसी से इसका नाम भी मंगल है। लोक संस्कृति, प्रथाओं और विश्वासों का चित्रण इसमें विशेष रूप से हुआ है। इनके अधिक विस्तृत वर्णन के कारण जानकी मंगल, पार्वती मंगल, से अधिक बड़ा है। यह २१६ छन्दों में समाप्त हुआ है जब कि पार्वतीमंगल १६४ छन्दों में ही। खंड काव्य की दृष्टि से यह अत्यंत सफल है।

६. *रामाज्ञा प्रश्न*—रामाज्ञा प्रश्न के ७ वें सर्ग के ७ वें सप्तक के

तीसरे दोहे में रचनाकाल का संकेत मिलता है, जो इस प्रकार है—

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान।
होइ सुफल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीति प्रमान॥

इसमें ससि = १, नयन = २, गुन = ६, बान नय अधिकावधि (५-४ = १) से रचनाकाल सं० १६२१ निकलता है। इसके पहले छक्कनलाल को मिली हुई एक प्रति में सं० १६५५ जेठ सुदी १० रविवार को लिखी होने का उल्लेख है। उपर्युक्त दोहे का अंतस्साक्ष्य मिल जाने से सं० १६५५ केवल प्रतिलिपि काल माना जा सकता है। इसी को कुछ विद्वानों ने दोहावली रामायण नाम भी दिया है। इसमें दोहों में संकेतात्मक रूप में विभिन्न कांडों की रामकथा वर्णित है। प्रथम सर्ग में बालकांड की घटनाओं का संकेत है। द्वितीय सर्ग में अयोध्याकांड और अरण्य की, तृतीय में अरण्य और किष्किंधा की, चतुर्थ में फिर बालकांड की, पंचम में सुंदरकांड और लंकाकांड की, षठ में उत्तरकांड की घटनाओं का सन्निवेश है, तथा सप्तम सर्ग में स्फुट प्रसंगों का निर्देशन है। विद्वानों का विचार है कि चतुर्थ सर्ग में पुनः बालकांड की घटनाओं का समावेश इस कारण से है कि जिससे पुस्तक के मध्य में भी मंगलमय प्रसंग आ सकें। इसी कारण से कथानक के विकास की दृष्टि से व्याघात होते हुए भी बालकांड प्रसंग चतुर्थ सर्ग में है।[1] वास्तव में रामाज्ञा प्रश्न को प्रबंधात्मक नहीं माना जाना चाहिए। अतएव यह दोष नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कवि ने जिस उद्देश्य से इसे लिखा है वह उद्देश्य पूर्ण इसी विधि से होता है। प्रथम सर्ग के सातवें सप्तक का अंतिम दोहा है—

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गंगा राम॥

इस संकेत से संबंधित एक कथा प्रचलित है कि गंगाराम एक ज्योतिषी थे और तुलसी के मित्र थे। ये प्रह्लाद घाट पर रहा करते थे। तुलसी नित्य इनके साथ गंगापार संध्यावंदन आदि को जाया करते थे। एक दिन जब तुलसी उन्हें बुलाने गये तो उन्हें अत्यंत खिन्न देखकर कारण पूछा। गंगाराम ने

---

१. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४०७, प्र० संस्करण।

बताया कि राजघाट के राजकुमार शिकार खेलने गये थे। वहाँ उनके साथी को बाघ ने मार डाला। खबर फैल गयी कि राजकुमार को बाघ ने खा डाला। राजा ने मुझे बुलाया और कहा कि विचार कर सच बताओ। ठीक होने पर एक लाख रुपये पुरस्कार और गलत होने पर प्राणदंड मिलेगा। उसी सोच में वे बैठे थे। गोस्वामी जी ने उनकी इस विपत्ति को दूर करने के लिए छह घंटे में रामाज्ञा प्रश्न का निर्माण किया। जिसपर विचार कर गंगाराम ने दूसरे दिन राजकुमार के सकुशल लौट आने का उत्तर दिया। गंगाराम को उस समय बंदीगृह में रख दिया गया। दूसरे दिन राजकुमार जब सचमुच आ गये, तब वे मुक्त हुए। एक लाख रुपया लेकर, उन्होंने गोस्वामी जी को दिया। उन्होंने केवल १२ हजार लेकर हनुमान जी के बारह मंदिर बनवाये। यह कथा गोस्वामी जी का महात्म्य बढ़ाने के लिए प्रचलित जान पड़ती है। घटना सत्य होते हुए भी ६ घंटे में २४३ छंदों का निर्माण असंभव सा जान पड़ता है। हो सकता है कि इस ग्रंथ के रचने की प्रेरणा देने का श्रेय उपर्युक्त घटना को हो।

'रामाज्ञा प्रश्न' में वर्णित कथा पर बाल्मीकि रामायण की कथा का ही प्रभाव अधिक है। परशुराम का विवाहोपरान्त आगमन, विप्र, उल्लू, श्वान के न्याय को निपटाना एवं सीता निर्वासन, लवकुश जन्म आदि का उल्लेख यही सिद्ध करता है। पुस्तक में रसभाव या कवित्वपूर्ण रचनाएँ अधिक नहीं, वरन् घटनाओं के गूढ़ संकेत ही मिलते हैं।

७. *दोहावली*—दोहावली की रचना भी एक सुदीर्घ समय में हुई जान पड़ती है। रुद्रबीसी का उल्लेख उसे सं० १६५६ से ७६ तक की रचना होने का संकेत करता है। बाहु पीड़ा का भी इसमें उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इसमें रामचरितमानस के ८५ दोहे, वैराग्यसंदीपिनी के २ दोहे, रामाज्ञा प्रश्न के ३५ दोहे और १३१ दोहे ऐसे हैं जो सतसई में मिलते हैं। दोहावली शुद्ध मुक्तक रचना है। इसमें कोई एक दोहा दूसरे दोहे का मुखापेक्षी नहीं। साथ ही साथ प्रमुख उद्देश्य नीति-वर्णन है। समाज, धर्म, व्यक्ति और राजनीति के सुन्दर प्रसंग इसमें देखने को मिलते हैं। दोहावली में भक्ति-संबंधी दोहे भी कम नहीं है और उनमें अद्भुत चमत्कार है। चातक के प्रसंग में प्रतीक-रूप से लिखी गई उक्तियाँ भक्त का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करती हैं। ज्योतिष-संबंधी भी अनेक दोहे हैं। व्यक्ति के आचार और नीति संबंधी दोहे तो बड़े ही

आलोचना खण्ड

राम-काव्य का विकास और रामचरित मानस

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस को 'नाना पुराण निगमागम-संमतम्' लिखा है, तथा अन्य अनेक विद्वानों और लेखकों ने राम-कथा के आधार-भूत ग्रंथों का उल्लेख किया है जिन्हें देखकर यह धारणा हो सकती है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती रामचरित-सम्बन्धी साहित्य से अपने रामचरित को संकलित किया। परन्तु जब हम पूर्ववर्ती राम-साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो यह धारणा स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी ने राम के इस, रूप, चरित्र और आख्यान के निर्माण में बड़ा परिश्रम किया है। राम का, विविध गुणों—शक्ति, शील, सौन्दर्य-से युक्त जो पूर्ण व्यक्तित्व हमें मानस में देखने को मिलता है, वह पूर्ववर्ती किसी भी एक काव्य में नहीं मिलता। समस्त रचनाओं को पढ़कर भी हम राम के सम्बन्ध में वह धारणा नहीं बना पाते, जो तुलसी के मानस-द्वारा बनती है। अतः युग युग को प्रभावित करने वाली कथा की रचना कर राम के व्यक्तित्व को इतना महान् उत्कर्ष और पूर्णता प्रदान करने में तुलसी को बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है। तुलसी का यह कार्य उतने ही महत्व का है जितना कृष्ण के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने में भागवतकार का है, वरन् लोकप्रियता के कारण उससे भी अधिक। सूर आदि कृष्ण-भक्त कवियों से तुलसी की विशेषता केवल इसी बात में अधिक बढ़ जाती है कि इन कृष्ण भक्त कवियों को कृष्ण के चरित्र के लिए भागवत का उत्कृष्ट आधार प्राप्त था, जबकि तुलसी को वैसा पूर्ण आधार प्राप्त न था।

तुलसी के पूर्ववर्ती राम-साहित्य पर दृष्टिपात करते समय सबसे पहले हमारा ध्यान वैदिक साहित्य पर जाता है। वेदों में राम का उल्लेख अवश्य मिलता है, पर उसे हम दशरथ-पुत्र राम के नाम से सम्बन्धित नहीं कर सकते। ऋग्वेद में राम का नाम असुर राजाओं के नाम के प्रसंग में नीचे लिखे मंत्र में आया है :—

प्र तदुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पंच शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥[1]

यहाँ पर दुःशीम, पृथुवान, वेन, राम असुर यजमानों के रूप में परिगणित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रसंगों में राम ब्राह्मण के नाम-रूप में हैं। जैसे राम मार्गवेय ब्राह्मण तथा राम औपतस्विनी तथा राम कृतु जातेय आचार्य। निश्चय ही इनका सम्बन्ध मानस के राम से नहीं। वैदिक साहित्य में सीता शब्द का प्रयोग हल से बनी हुई लकीर, कूँड के लिए आया है। सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भी है। यह देवीकरण की प्रवृत्ति वैसी ही है जैसी कि उषा, वरुणा, इद्र, वन-देवी आदि में। इसके अतिरिक्त सीता का प्रयोग सूर्य पुत्री के रूप में भी हुआ है। परन्तु इनका रामायण की सीता से सम्बन्ध नहीं दीखता। हाँ, कुछ लोग सीता का हल की लकीर का अर्थ ग्रहण करके सीरध्वज जनक के खेत जोतने से सीता की उत्पत्ति का सम्बन्ध लगाते हैं। इन्हीं आधारों पर कुछ लोग राम और सीता के व्यक्तित्वों को काल्पनिक मानते हुए, रामकथा को प्रतीकात्मक समझते हैं जैसा कि जैकोबी का विचार है। परन्तु बाल्मीकि का वर्णन यह सिद्ध नहीं करता। दशरथ का नाम वैदिक साहित्य में एक प्रतापी योद्धा राजा के रूप में हुआ है तथा जनक विदेह का उल्लेख विद्वान राजा के रूप में हुआ है। पर विशेष विवरण नहीं। इससे ज्ञात होता है कि राम का चरित्र वैदिक ऋषियों को अज्ञात था और अन्य व्यक्तियों के उल्लेख रामकथा के पात्रों से सम्बन्ध नहीं रखते। राम का समय उसके बाद का है।

राम का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण उल्लेख बाल्मीकि रामायण में ही हुआ है। रामायण का समय संदिग्ध है। कुछ लोग इसका समय ई० पू० ६०० से ४०० तक मानते हैं और कुछ विद्वान् इसे ३०० वर्ष ई० पू० को रचना बताते हैं। बाल्मीकि रामायण के तीन पाठ हैं—पश्चिमोत्तर, पूर्वीय और दाक्षिणात्य। इन तीनों पाठों में कथा की दृष्टि से बहुत कम अन्तर है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि राम-कथा की परम्परा मौखिक थी, लिखित नहीं और उसी परम्परा को लेकर विभिन्न पाठों का विकास हुआ। इसका संकेत स्वयं बाल्मीकि रामायण में है :—

---

१. ऋग्वेद, मं० १०, सू० ६३, मंत्र १४

इक्ष्वाकूणां इदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥३॥[1]

इस प्रकार पहले से प्रचलित रामायणाख्यान को एक कथा-सूत्र में बाँध कर, जिस दिन बाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की उसी दिन से राम गाथा की दिग्विजय प्रारम्भ हुई। अश्वघोष के उल्लेख[2] से पता चलता है कि राम-चरित पहले च्यवन ऋषि ने लिखा जिसे बाल्मीकि ने विशेष काव्य-सौन्दर्य से युक्त किया। बाल्मीकि की मूल-कथा अयोध्याकांड से लेकर युद्ध कांड तक मानी जाती है और बाल कांड तथा उत्तर कांड बाद को जोड़े गए प्रक्षिप्त अंश माने जाते हैं। बाल्मीकि के द्वारा लिखित कथा का कुश, लव ने समस्त देश में गा गाकर प्रचार किया था। राम-कथा की लोक-प्रियता इस प्रकार बढ़ी और प्रक्षिप्त अंशों में राम को अवतार रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया। परन्तु, मूल बाल्मीकि रामायण में जो रूप है वह एक सदाचारी, पराक्रमी, सुन्दर, सद्गुण सम्पन्न राजा का रूप है। बाल्मीकि रामायण में वैदिक देवता मान्य हैं, पर विष्णु का राम से कोई सम्बन्ध नहीं। हाँ, बाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप का निर्माण अवश्य उस समय हुआ जब कि राम की विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

महाभारत में राम की कथा का संकेत कई प्रसंगों में हुआ है। इनमें शोकाकुल युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए मार्कण्डेय ऋषि-द्वारा सुनाया हुआ रामोपाख्यान सबसे प्रमुख है। यह उपाख्यान बाल्मीकि रामायण का आधार लिए हुए है। इसके अतिरिक्त द्रोण, शांति और सभा पर्वों में भी षोडशराजीय उपाख्यान में रामचरित्र का वर्णन किया गया है। इनमें कुछ का आधार मूल कथा और कुछ का पूर्ण बाल्मीकि रामायण है, क्योंकि वहाँ राम की प्रतिष्ठा अवतार रूप में है।

बौद्ध ग्रंथ 'जातक' में भी राम कथा के कुछ प्रसंग हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध दशरथ जातक है। डाक्टर वेवर (waver) के अनुसार राम कथा का मूल बौद्ध जातकों में सुरक्षित है। डा० जैकोबी ने रामायण की कथावस्तु के दो स्वतंत्र भाग माने हैं—प्रथम भाग अयोध्या से सम्बन्ध रखता है और वह ऐति-

---

१. बालकांड, ५ । ', २ श्लोक २. बुद्धचरित, १, ४८

हासिक घटनाओं पर आधारित है, पर द्वितीय भाग काल्पनिक है। दशरथ जातक के भीतर सीताहरण और राक्षसों के साथ राम के संघर्ष की कथा को छोड़कर शेष सारी मूल कथा है। इसके अनुसार महाराज दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनकी तीन संताने थीं—राम, लक्ष्मण और सीता। पहली पटरानी के मरने पर दूसरी पटरानी हुई जिससे भरत कुमार नामक पुत्र हुआ। उस रानी ने भरत को राजा होने का वर माँगा। षडयन्त्र के भय से वे राम लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम बन चले जाओ और बारह वर्ष के अनन्तर मेरे मरने पर, तुम लौट आना और राज्य सँभालना। पिता की आज्ञा से दोनों अपनी बहिन के साथ वन चले गये और हिमालय प्रदेश में आश्रम बनाकर रहने लगे। दशरथ का नौ वर्ष में ही देहान्त हो गया तब भरत उन्हें लेने के लिए गए, पर राम अवधि पूरी किए बिना वापिस आने को तैयार न हुए। भरत उनकी तृण पादुकाओं को लेकर लौट आए। भरत के साथ सीता, लक्ष्मण भी लौट आए। यदि कोई अन्याय करता था तो पादुकायें एक दूसरे पर आघात करती थीं। अन्त में तीन वर्ष बाद राम भी लौट आए और अपनी बहन सीता देवी के साथ विवाह करके सोलह सहस्र वर्ष तक राज्य करते रहे। कथा का मूल कुछ तो जातकों में है और शेष विस्तार उसके गद्य टीका कारों ने किया है। आगे चलकर उनमें सीता को राम की बहिन नहीं, वरन् स्त्री ही के रूप में माना गया है। कुछ लोगों का विचार है कि मूल कथा उतनी ही है जितनी 'दशरथ जातक' में है, परन्तु यह विचार सर्वमान्य नहीं। इन समस्त कथाओं का मूल-स्रोत प्राचीन रामकथा का मौखिक रूप ही समझना चाहिए। 'अनामक जातक' में प्रायः पूरी रामकथा दी हुई है, पर उसमें राम, सीता आदि नाम नहीं, राजा-रानी आदि के रूप में कथा है।

जैन रामकथा का अपना निजी रूप है। इनमें राम, लक्ष्मण और रावण जैन धर्मानुयायी महापुरुषों के रूप में है। इसका रूप दूसरा ही है। विमल सूरि कृत 'पउम चरिउ' 'पम्प रामायण', गुणभद्रकृत 'उत्तर पुराण' आदि में रामकथा का उल्लेख है। इसमें सीता को रावण और मंदोदरी की संतान बताया गया है जिसे अनिष्टकारी समझकर मंजूषा में रखकर मिथिला में गड़वा दिया गया था और जो जनक को हल जोतते समय मिली थी।[1] सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा

---

१. परशुराम चतुर्वेदी : मानस की रामकथा, पृष्ठ ८०, ८१

सुनकर वह नारद से प्रेरित होकर हर ले गया और राम रावण का वैमनस्य सूर्पणखा की नाक काटने पर नहीं, वरन् खरदूषण के पुत्र शंबुक का सिर काटने के कारण होता है। इसमें रावण बध लक्ष्मण करते हैं। राम लक्ष्मण, बनारस के राजा दशरथ के पुत्र थे।

बौद्ध, जैन और पौराणिक हिन्दू रामकथाओं में इस प्रकार हमें अन्तर देखने को मिलता है।

भारतवर्ष में ही नहीं 'रामकथा' विभिन्न रूपों में भारत-खंड के बाहर चीन, तिब्बत, इंडोनीशिया, श्याम, [illegible] आदि देशों में भी प्रचलित हुई। तिब्बती रामायण, चीन का "दशरथ कथानम्" इंडोनीशिया का "रामायण काकावनि" जावा का "सेरतराम" कम्बोडिया का "रेश्रामकेर", श्याम का "रामकियेन" तथा ब्रह्मा का "यामप्वे" नामक ग्रंथ रामकथा के ही देश-धर्म-कालानुकूल रूप हैं। इस प्रकार राम-कथा एशिया के विभिन्न देशों के व्याप्त हो गई थी। साथ ही राम के चरित्र और कथा ने बड़े व्यापक रूप से काव्य को प्रेरणा दी।

पुराणों में भी राम से संबंधित प्रसंग हैं और उन प्रसंगों के कथानक का आधार प्रमुखतया वाल्मीकि रामायण ही है। अन्तर केवल इतना है कि इनमें विभिन्न मतों के अनुसार उसको विस्तार और महत्व दिया गया है; परन्तु इनमें प्रायः राम अवतार के रूप में ही प्रतिष्ठित हैं। इनके भीतर अवतार-संबंधी भावना दृढ़ मिलती है। अवतार की भावना का कारण कुछ लोग बौद्ध जातकों और कथानकों को मानते हैं * जिनमें बुद्ध के व्यक्तित्व में सर्वकालज्ञता की प्रतिष्ठा की गई। उसी से प्रेरित होकर वैष्णव मतों में भी विष्णु में अवतारों तथा शैवमत में शिव की ब्रह्म रूप में कल्पना की गई। वैष्णव मत में तो आगे चलकर बुद्ध को स्वयं दशावतारों में से एक अवतार मान लिया गया। सबसे पहले विष्णु के छः अवतार माने गये, परन्तु आगे चलकर नारायणी और विष्णु संहिताओं में अवतारों की संख्या दश हो गई और शक्ति का भी संबंध जुड़ गया। छठीं शताब्दी ईसवी में राम ब्रह्म के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो

---

* जे० एन्० फ़र्कुहर—'ऐ। आउटलाइन आफ़ रिलीजस लिट्रेचर आफ़ इंडिया', पृ० १८४

चुके थे और राम-काव्य के विकास का प्रारंभ हो चला था। भागवत पुराण, योग वासिष्ठ, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण आदि धार्मिक ग्रंथों में राम के चरित्र का माहात्म्य प्रगट हुआ है और उनकी शक्ति और ऐश्वर्य का वर्णन है। अध्यात्म रामायण में राम को पूर्ण परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया जिसका उद्देश्य रामभक्ति प्रचार है। इसमें पहली बात तो यह है कि राम से रावण जान बूझकर इसलिए बैर करता है कि उसके हाथों मृत्यु लाभ कर वह बैकुण्ठ प्राप्त करे और दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सीता जिन्हें रावण हर ले जाता है, वे वास्तविक सीता नहीं, वरन् माया रूप सीता हैं। 'अध्यात्म रामायण' में आयी अनेक स्तुतियाँ अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा करती हैं।

इसके अतिरिक्त राम के चरित्र और कथानक ने अनेक संस्कृत-काव्यों को भी प्रेरणा दी। इन काव्यों में महत्वपूर्ण हैं—कालिदास कृत रघुवंश, प्रवरसेन कृत रावण बध, कुमारदास कृत जानकी हरण, क्षेमेन्द्र कृत रामायण मंजरी, दशावतार चरित, भट्टिकाव्य, आदि। इनमें प्रायः वाल्मीकि रामायण का आधार ही लिया गया है। रामकथा के आधार पर संस्कृत में अनेक नाटक भी रचे गये और इनमें भी प्रमुखतया आधार वाल्मीकि रामायण का ही है। इन नाटकों में प्रसिद्ध—भासकृत प्रतिमा और अभिषेक, भवभूतिकृत महावीर चरित, उत्तर राम चरित, राजशेखर कृत बालरामायण, दिङ्नाग कृत कुन्दमाला, मुरारि कृत अनर्घ्यराघव, जयदेव कृत प्रसन्नराघव, हनुमान कृत महानाटक या हनुमन्नाटक, हैं। इनमें राम के जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है।

संस्कृत में ही नहीं, रामकथा से संबंध रखनेवाले काव्य भारत की अन्य भाषाओं में लिखे गये—'तमिल रामायण', तेलुगु की 'द्विपाद रामायण' या रंगनाथ रामायण, मलयालय की 'इराम चरित' कन्नड की 'तोरावे रामायण', 'काश्मीरी रामायण', बंगला की 'कृत्तिवासीय रामायण' तथा रघुनंदन गोस्वामी-कृत 'रामायण' उड़िया की 'जगन्मोहन रामायण' या 'दांडि रामायण', 'विलंका रामायण', 'विचित्र रामायण' मराठी की 'भावार्थ रामायण' तथा 'रामविजय' गुजराती की 'रामविवाह' और 'रामबाल चरित' आसामी की 'रामविजय' एवं 'गीतिरामायण' आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं[1] इस समस्त साहित्य में प्राप्त कथानक या

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिये—डा० कामिल बुल्के: रामकथा, अध्याय, ११

ो बाल्मीकि रामायण के आधार पर है अथवा लोक-परंपरा द्वारा पहुँची हुई राम-कथा का मौखिक रूप हैं। मुद्रण व्यवस्था न होने पर भी रामकथा का इस प्रकार दूर-दूर प्रचार हुआ, यह राम के महत्व और लोकप्रियता का संकेत करता है।

इन ग्रंथों में आये विवरणों और चरित्र-चित्रण से यह स्पष्ट है कि जो रूप राम का इनमें स्पष्ट हुआ है, वह तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में आये स्वरूप के समान पूर्ण नहीं। बहुतों में तो एकांगी चित्र हैं और बहुतों में बाल्मीकि रामायण में चित्रित उदात्त चरित्र, पूर्ण रीति से ग्रहीत नहीं हो पाया। जिन ग्रंथों में राम का चरित्र विशेष निखरा है वे—बाल्मीकि रामायण, भागवत, रघुवंश, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, उत्तररामचरित तथा प्रसन्न राघव नाटक हैं। इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग पढ़ने पर तथा सामूहिक रूप से सब को हृदयंगम पर भी राम के उस पूर्ण स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं होता जो रामचरितमानस में प्रकट हुआ है। इसलिए रामकाव्य के भीतर तुलसी-द्वारा 'रामचरित मानस' में प्रतिष्ठित राम के स्वरूप की अपनी विशेषता है। तुलसी ने राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनकी यह प्रतिष्ठा पूर्ण होते हुए भी प्रामाणिक हैं; क्योंकि उसका अंगप्रत्यग उन्होंने पूर्ववर्ती किसी न किसी ग्रंथ से लिया है। उन्होंने रामकथा के विभिन्न अंगों और रूपों को पूर्ववर्ती तथा समकालीन राम साहित्य में प्राप्त कथानकों से चुन-चुन कर सँवारा और सजाया था। अतः 'रामचरित मानस' की विशेषता उसकी पूर्णता, प्रामाणिकता तथा सुन्दरता में है जो किसी एक ग्रंथ में एक साथ देखने को नहीं मिलतीं।

हिन्दी भाषा में भी 'रामकाव्य' की परंपरा है। तुलसी के पूर्व रामकाव्य लिखने वाले कवि भूपति थे जिन्होंने सं० १३४२ में 'रामचरित रामायण' लिखी थी। इसका केवल उल्लेखमात्र ही १९०६ की खोज रिपोर्ट में मिलता है अन्य विवरण उपलब्ध नहीं। तुलसी के समकालीन मुनिलाल कवि ने 'रामप्रकाश' नामक काव्य में रीतिशास्त्र के आधार पर रामकाव्य लिखा। समकालीन अन्य कवियों में उल्लेखनीय—नाभादास, केशवदास और सेनापति हैं। नाभादास जी के रामभक्ति-संबंधी कुछ सुन्दर पद हैं। केशव की रामचंद्रिका, राम के जीवन को लेकर लिखा गया महाकाव्य है जिसका प्रमुख आधार हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव नाटक हैं। रामचंद्रिका में केशवदास की वृत्ति स्वयं ही तन्मय नहीं हो पायी, अतः 'मानस' से इसकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। सं० १६६७

में 'रामायण महानाटक' को प्राणचंद चौहान ने लिखा जिसमें संवादरूप में राम की कथा है। इसी प्रकार का हृदयराम का सं० १६२३ में लिखा हनुमन्नाटक है जो संस्कृत के नाटक के आधार पर है। इसी प्रकार अन्य छोटे-मोटे काव्य राम के जीवन से संबंध रखने वाले लिखे गये। इन रामकाव्यों में हनुमन्नाटक का तथा कृष्ण काव्य का प्रभाव पड़ा। परिणाम-स्वरूप राम और सीता के शृंगार तथा विलास-चेष्टाओं का भी वर्णन हुआ। ये 'रामचरित मानस' के आदर्श से भिन्न हैं। १८वीं शताब्दी के अन्त में रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने राम चरित से संबंधित अनेक काव्य लिखे जिनमें से छः का उल्लेख मिलता है और उनमें भी 'आनद रघुनंदन' काव्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस काल में अन्य रचनाएँ सामान्य महत्व की हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरिधरदास ने भी राम से संबधित कतिपय ग्रंथों का प्रणयन किया। परन्तु तुलसी के उपरान्त राम-साहित्य पर कुछ बहुत महत्वपूर्ण नहीं लिखा गया जिसका प्रमुख कारण यही जान पड़ता है कि तुलसी ने अपने 'मानस' से भीतर राम के चरित्र को जिस पूर्णता से प्रतिष्ठित किया उस पूर्णता के सामने अन्य लोगों के प्रयत्न महत्वहीन सिद्ध होते हैं।

आधुनिक युग में भी राम की कथा को लेकर कुछ रचनायें हुई हैं जिनमें विशेष प्रसिद्ध हैं—रामचरित चिन्तामणि (रामचरित उपाध्यायकृत), वैदेही बनवास (हरिऔध कृत), साकेत और पंचवटी (मैथिलीशरण गुप्त कृत), तथा कौशलकिशोर और साकेत संत (बलदेवप्रसाद मिश्र कृत) इनमें सबसे महत्वपूर्ण कृति 'साकेत' है जिसमें राम के मानवोचित गौरव को स्पष्ट किया गया है तथा उनके चरित्र की आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या है। रामचरित के बीच लक्ष्मण और उर्मिला के चरित्रों का महत्व चित्रित करना कवि का प्रमुख ध्येय है।

तुलसी के परवर्ती और पूर्ववर्ती उपर्युक्त समस्त ग्रंथों को सामने रखकर भी जब हम विचार करते हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन ग्रंथों में किसी भी एक में 'रामचरित मानस' की सी पूर्णता, व्यापकता, प्रभावात्मकता, और गंभीरता एक साथ विद्यमान् नहीं मिलती। अतः रामकाव्य में इस ग्रंथ का अद्वितीय महत्व है।

तुलसी ने अपने रामचरित मानस के निर्माण में अनेक शास्त्रों, पुराणों,

तुलसी का राज्यादर्श

आज के युग में जीवन की सभी बातें राजनीतिक पृष्ठ भूमि पर देखी जाती हैं। शताब्दियों की दासता के कारण, राजनीतिक बन्धनों से मुक्ति हमें राजनीतिक चेतना की महत्ता बता रही है। और सभी वस्तुओं को राजनीति के रंग से रँगा हुआ दिखाती है, पर, यह दृष्टिकोण और यह भावना भारतीय जन-समूह की सार्वकालिक नहीं हो सकती न रही थी और न रहेगी ही। राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति और रक्षा हमारा उद्देश्य अवश्य है और उसके बिना काम भी नहीं चल सकता, पर देश की स्वतंत्रता की रक्षा जन-साधारण का दैनिक कार्य नहीं हो सकता। इस रक्षा का उत्तरदायित्व कुछ के सिर पर रहेगा—हाँ, समय पर सभी साथ दे सकते हैं। जो विशाल भारत देश के जन-साधारण के जीवन की गतिविधि इस रूप में नहीं समझते, वे कभी-कभी इस परिस्थिति की उल्टी व्याख्या कर बैठते हैं। और कहते हैं कि भारत में राजनीतिक चेतना का अभाव रहा है। यथार्थ में भारतीय राजनीति सदा ही धर्म की अनुगामिनी रही है। "धर्म" का अर्थ समझने में यदि हम भ्रम न करें, तो हम, *समाज तथा व्यक्ति को धारण करने वाले, विकासात्मक कर्तव्यों को धर्म कह सकते हैं* और इस दृष्टि से धर्म बड़ी व्यापक वस्तु है, जिसका हम साम्प्रदायिक अर्थ लगा कर उसका अपमान करते हैं। मानव धर्म शास्त्रों तथा स्मृतियों में मनुष्य का तथा जाति, समाज और व्यक्ति का धर्म बताकर उसके दैनिक जीवन की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है। उस धर्म का हम तिरस्कार नहीं कर सकते। राजनीति भी इसी प्रकार का एक धर्म है। जिसमें राजा और राज्याधिकारी अथवा सचिव, मंत्री, अमात्य आदि एक विशेष प्रकार के नियमों और सिद्धांतों का पालन करते हैं। अतः यह राजधर्म या राजनीति हमारे देश में व्यापक धर्म का एक अंग मात्र रहा है। सम्पूर्ण धर्म को इसने ग्रस्त नहीं किया। विशेष अवसरों पर अवश्य इसे प्रधानता मिलती रही है। जैसे महाभारत में, अथवा गुप्तकाल में।

ऊपर कहे कारण से राजनीति के साथ-साथ भी धर्म का तिरोभाव नहीं

हो सकता और जनसाधारण अपने व्यापक मानव धर्म और समाज धर्म का पालन सदा ही करते रहें, यही सबसे अच्छा है। क्योंकि साधारण व्यक्ति के लिए व्यापक-धर्म का पालन करना, आपद्धर्म के पालन करने से सरल है। जब जन-साधारण-आपद्धर्म या युद्धधर्म का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं तब समझना चाहिए कि शासन-व्यवस्था क्षीण और निर्बल है। अन्यथा ऐसा अवसर व्यापक युद्धकाल में ही आता है जब शासक और जनता दोनों उसमें ही व्यवस्थित ढंग से तत्पर होते हैं।

धर्म और समाज, जन और धन की रक्षा के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। तेजस्वी नेताओं की अपनी भी शक्ति होती है और उनके तेज, प्रताप और शौर्य के साथ जहाँ जनता की शक्ति मिल जाती है, वहां विजय निश्चत है। विवेक पूर्ण, दूरदर्शी नेतृत्व के साथ जहां भी विश्वास पूर्वक बल का प्रयोग होता है। वहाँ हार नहीं हो सकती। इसी की ओर संकेत करते हुए गीता में कहा गया है :—

यत्र योगेश्वरो कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

समस्त राष्ट्र की सेना का प्रतीक अर्जुन हैं और विवेकी संचालक के प्रतीक कृष्ण हैं। राजनीति और राष्ट्र धर्म का यह महत्वपूर्ण तथ्य है।

परन्तु यह राज्यधर्म का युद्ध-सम्बन्धी एक पक्ष है, सम्पूर्ण राज्य धर्म केवल विजयों-द्वारा ही पालित नहीं होता, वरन् शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धि के द्वारा प्रकट होता है। अतः पूरे राज धर्म को समझने के लिए हमें दोनों पक्ष देखने आवश्यक हैं।

ये दोनों पक्ष हमें बड़ी सुन्दरता से महात्मा तुलसीदास द्वारा चित्रित राम के चरित्र में देखने को मिल सकते हैं। तुलसी ने जहाँ पर धर्म और समाज की सुन्दर और आदर्श व्याख्या की है, वही पर 'राज-धर्म' की ओर भी सुन्दर संकेत किए हैं और इन संकेतों के द्वारा, एक विशिष्ट परवशता के युग में भी उनकी विलक्षण प्रतिभा पर आश्चर्य होता है।

तुलसी का राज्य 'राम-राज्य' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है परन्तु उस रामराज्य की महत्ता और आवश्यकता बताने के लिए उन्होंने कलियुग का भी चतुराई से चित्रण किया है। 'रामचरित मानस' का कलियुग चित्रण जैसा पहले

कहा जा चुका है तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण था। यदि उस युग के सम्बन्ध में सीधे ढंग से कोई इतनी आलोचना कर देता, तो राजनीतिक दंड मिलना निश्चित था। परन्तु गोस्वामी जी की चतुराई और प्रबन्ध कौशल, इस बात में है कि स्पष्टबात कहने पर भी किसी की भी इस प्रकार सोचने की बुद्धि न हुई। अशिक्षित और अयोग्य राजाओं तथा एकांगी राजनीति की आलोचना करते हुए उन्होने लिखा है:—

गोंड़ गँवार नृपालकलि यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद, कलि, केवल दंड कराल॥

स्पष्ट है कि उनका संकेत किस कलियुग से था। यथार्थ में उनकी व्याख्या, अलोचना सच्ची थी यदि कोई भी तुलसी के विचार का राजा होता तो रामराज्य का बरता जाना निश्चय था, पर धार्मिक और राजनीतिक कारणों से ऐसा न हो सका।

राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में विवशता होते हुए भी गोस्वामी जी ने समाज को रामराज्य का आदर्श अवश्य प्रदान किया। इसी कारण से उनका 'रामचरित-मानस' जिस आदर्श की स्थापना करने में प्रयत्नशील है वह शील पर प्रमुखता आधारित है। राजनीतिक दृष्टि से तुलसी के समय में 'कलियुग' की ही व्यवस्था थी, पर समाज में उन्होंने 'रामराज्य' की पूरी व्याख्या की। जिसका प्रभाव आज भी, हमारी ग्राम समाज की अपढ़ तथा अर्द्धशिक्षित जनता के आदर्श एवं त्यागमय व्यवहारों में देखा जाता है। स्त्री-समाज में आज भी कितनी ही अशिक्षित किन्तु आदर्श माताएँ हैं, जो राम के द्वारा स्थापित आदर्श और मर्यादा की पग पग पर रक्षा करती हैं। महात्मा तुलसीदास स्वयं 'रामराज्य' में रहे और सभी को खरे कलियुग के बीच 'रामराज्य' की व्यवस्था करने की विधि भी बता गए। उनकी इस प्रकार की सूझ, पिछले दिनों की राज्यों में बनती हुई अस्थायी जन-सरकारों की कल्पना से कम महत्व नहीं रखती।

तुलसी का कलियुग 'वर्णन' भुशुंडि-कथा के अन्तर्गत अपना अलग महत्व रखता है। उसका वर्णन हमारे सामने न केवल रामराज्य से विषमता ही स्पष्ट करता है। वरन् वह तत्कालीन जन-परिस्थिति का द्योतक है। आज भी हमारी परिस्थिति बहुत कुछ वैसी ही है, उसका एक दृश्य देखिए : —

मारग सोइ जकहँ जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ सन्त कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥

इस प्रकार अन्य विषम परिस्थितियों का वर्णन है। जनता मूढ़, दुःखी और अधर्मरत है। जनता की यह दुःखमयी दशा, तुलसी का यह विचार है कि राजा या शासक की कुनीति और दुराचार के कारण होती है। जब शासक अपना धर्म पालन करता है तभी प्रजा भी सुखी, सदाचारी और समृद्ध रहती है। आजकल संसार में राजतंत्र समाप्त हो रहे हैं और लोकतंत्रों की स्थापना हो रही है। इसका मुख्य कारण यही है कि राजा की सद्वृत्ति पर प्रजा का विश्वास नहीं है। राजा स्वेच्छाचारी और अत्याचारी होकर बराबर यह प्रमाण देते हैं कि उनके हाथों जनहित सुरक्षित नहीं। पर तुलसी का राज्यादर्श ऐसे राजा या शासक की कल्पना करता है जिसका व्यक्तिगत स्वार्थ कुछ है ही नहीं। त्याग ही जिसका व्यवहार है, तथा लोकादर्श और लोकहित जिसका नियम है। राम के विवाह के पश्चात् राजा ने अपनी इच्छा होते हुए भी राम के राजतिलक की स्वयं घोषणा नहीं की, वरन् मंत्रियों और पंचों से पूछ कर उनकी इच्छा जाननी चाही :—

जौ पाँचै मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका।
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत-बिरव परेउ जनु पानी।

परन्तु त्यागमय आदर्श राम में देखने को मिलता है। यह निश्चय जानकर कि राम का अभिषेक होने जा रहा है, राम प्रसन्नता से नाच नहीं उठे और लोगों को भोज और दावतें नहीं देने लगे, वरन् उन्हें राज्य का भार अकेले अपने हाथों लेना अनुचित जँचा, वे 'सम्मिलित उत्तरदायित्व' के पक्षपाती थे क्योंकि वे अच्छी प्रकार जानते थे कि शासक होने का अर्थ चैन और मौज नहीं, त्याग और कार्य है। अतः उन्होंने सोचा :—

जनमें एक सङ्ग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।
विमल वंश यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाय बड़ेहिं अभिषेकू।

यदि सभी के हाथ, राज्य का कार्य रहता और सभी पर राज्य-संचालन का सम्मिलित भार रहता, तो न राम का वनवास ही होता और न इस

प्रथा के कारण जो इतिहास में अनेक भाइयों के रक्तपात हुए हैं, वही होते। अतः तुलसी के आदर्श का, राम के तर्क में सुन्दर संकेत उपस्थित हैं।

राम को सभी चाहते थे, उसका कारण उनका सौन्दर्य और शील था। और राम विजयी होकर एक आदर्श राज्य की स्थापना कर सके, इसका कारण उनकी शक्ति और नीति थी। राम के व्यक्तित्व का पूर्ण प्रकाशन तुलसी-द्वारा रामचरित मानस में ही हो पाया है, इसके पूर्व नहीं। अतः राम के आचरण, व्यवहार और नीति में तुलसी की कल्पना और धारणा का प्रमुख हाथ है। राम, धर्मशील, नीतिकुशल और वीर हैं। धर्मशीलता राजा का प्रमुख गुण है। इसके विपरीत होने पर वह स्वेच्छाचारी हो जाता है, इसी कारण भरत ने राम की प्रशंसा करते हुए राजा का धर्मशील होना एक परमावश्यक गुण बताया है।

कहौं साँच सब सुनि पतिपाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू।
मोहि राज हठि देहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।

इस कथन का निष्कर्ष यह नहीं कि भरत धर्मशील और नीतिज्ञ नहीं, वरन् तात्पर्य यह है कि राजा में यह गुण प्रमुख रूप से होना चाहिये। राम में यह धर्मशीलता अपनी चरम सीमा में मौजूद है। साधु सज्जनों की रक्षा करना और आततायियों को दण्ड देना, राम का स्वभाव है। वन में राक्षसों-द्वारा खाये हुये ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखकर उन्होंने मुनियों से पूछा कि ये यह हड्डियाँ किसकी हैं, तब मुनियों के उत्तर को सुनकर उनका हृदय करुणा से भर गया था। तुलसी ने लिखा है :—

निसिचर निकर सकल मुनिखाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए।

राम इस प्रकार का अत्याचार नहीं देख सकते थे। निर्दोष, तपस्यानिरत और सद्वृत्त मुनियों पर आततायियों का अनाचार देखकर राम को बड़ा रोष हुआ और उन्होंने इस अत्याचारियों के नाश की प्रतिज्ञा की :—

निसिचर हीन करौं महि,भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हिं, जाय जाय सुख दीन्ह।

यह राम की वीर भावना है। प्रजा पर अत्याचार करने वाले को दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य है और राम इस कर्त्तव्य से कभी विमुख नहीं हुए।

राम की नीति-धर्म-शीलता और वीरता के कारण ही सुग्रीव से मैत्री

हुई। बालि का वध और सुग्रीव का फोड़ना यह राम की सुनीति का परिणाम था। राम धर्मशील तो थे ही, पर नीचों को दण्ड देना भी वे जानते थे। राम ने समुद्र से विनय-भरी नीति का प्रस्ताव किया पर जब उससे काम न चला, तब दण्ड का भी सहारा लेने में उन्हें किंचिन्मात्र हिचक न हुई।

विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, बिनु भय होय न प्रीति।

राम के चरित्र-द्वारा स्पष्ट, नीति के अतिरिक्त तुलसी ने अन्य कथनों में भी राजनीति के सुन्दर सिद्धांतों का निरूपण किया है। ये विशेष रूप से दोहावली में मिलते हैं। तुलसी का विचार है कि जो यथार्थ में सच्चा नीतिज्ञ और प्रजापालक राजा है, वह ईश्वर के आदेश को समझता है। राजा जैसा करता है, वैसी ही प्रजा भी हो जाती है। अतः बुद्धिमान राजा को विचार कर, ईश्वर की इच्छा समझकर कार्य करना चाहिये :—

काल बिलोकत ईस रुख, भानु काल अनुहारि।
रबिहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं बिचारि।

राजा के सचिव, मन्त्री और सङ्गी भले होने चाहिये क्योंकि इनका प्रभाव बुरा और भला राजा पर पड़ता है तुलसी ने लिखा है।

जथा अमल पावन पवन, पाइ कुसङ्ग सुसङ्ग।
कहिय कुवास सुवास तिमि, काल महीस प्रसंग।

राजा के गुण

राजा में प्रजापालन के स्वाभाविक गुण होने चहिए, और भला राजा वही है जो प्रत्येक प्रकार से जन-कल्याण और समृद्धि के कार्य करता है। ऐसा राजा प्रजा के भाग्य से ही मिलता है।

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होहिगे, कबहूँ कबहुँ कलि काल॥

माली का कार्य है, पौधों की काट छाँट करना, पुराने पत्तों और हानिकारक घासों को काटकर दूर करना और उनकी सुन्दर और आवश्यक बाढ़ के लिए, रूँधना और पानी से सींचना। राजा का भी कार्य प्रजा के प्रति होता है। वह अपने जनों के बीच उपस्थित दोषों और बुराइयों को कानून लगा कर दूर

करता है, दुष्टों को दंड देता है और सब प्रकार से सुरक्षा और समृद्धि के सामान जुटाता है। सूर्य के कार्य पौधों को रूप, रंग, प्रकाश और गर्मी देना, जलवृष्टि करना आदि हैं। राजा के लिए भी सभी प्रकार से प्रजा की उन्नति करना कर्तव्य है। इसी प्रकार किसान खेत को जोतता है, बोता है। अन्न उत्पन्न कर सब को खाने को देता है। राजा भी इसी प्रकार से अनुपजाऊ देशको उपजाऊ बनाता है। अरक्षित की रक्षा करता है और सबके पालन का भार ग्रहण करता है। अतः जिस राजा में तीनों तरह के गुण हों। वह सचमुच दुर्लभ है।

इसी प्रकार तुलसी ने राजा को कर लेने के संबन्ध में एक सुन्दर सुझाव दिया है। वे कहते हैं :—

बरषत, हरषत, लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग तें, भूप भानु सो होइ॥

राजा को कर इतना कम और इस प्रकार से लेना चाहिए कि कर लेते समय किसी को जान न पड़े, पर उसके बदले में जब सुख, समृद्धि की वर्षा हो तो सभी देख कर प्रसन्न हों और कहें कि राजा बड़ा दानी और प्रजापालक है। यह शिक्षा हमें सूर्य से प्राप्त होती है। सूर्य थोड़ा-थोड़ा करके पानी सोखता है। उस समय हमको कुछ भी नहीं जान पड़ा पर जब वर्षा में वही पानी बरसाता है तो सारा विश्व तृप्त हो जाता है। अतः अनेक बातों में राजा को प्रकृति के व्यापारों के शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

राम के जीवन के रूपक-द्वारा तुलसी के नीचे लिखे दोहे से राजनीति का एक रुचिर तथ्य स्पष्ट किया है :—

भूमि रुचिर रावन सभा, अंगद पद महिपाल।
धरम राम, नय सीय बल, अचल होत सुभ हाल॥

रावण की सभा में राम और सीता के बल से अंगद ने अपना पद रोपकर रावण के सभी योद्धाओं को ललकार दिया था, पर कोई उनका पद हटा न सका। ऐसे ही धर्म और नीति के बल पर इस पृथ्वी पर राजा अचल रहता है। तुलसी के विचार से राजा को अपनी प्रजा, राज, धन आदि शान्त और त्यागी सचिवों के हाथ सौपना चाहिए। उपयुक्त सचिवों से ही राज्य की प्रतिष्ठा होती है और स्वार्थी, अनुद्योगी, क्रोधी और विलासी सचिवों से सारा राज्य-काज चौपट हो जाता है। ऐसे ही स्वामी और सेवकों के बीच राज्यानुशासन का भी होना

परमावश्यक है। सेवक सदा आज्ञानुसार काम करने वाले हों यह ठीक है, पर राजा को उनके भरण-पोषण और सवृद्धि का ध्यान रखना चाहिए। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए तुलसी ने लिखा है :—

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहेब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥

त्यागी मंत्री हो; पर साथ-ही-साथ यह भी आवश्यक है कि ये निर्भय होकर मंगल और अमंगल की बात राजा को बता सकें, तभी राजा और प्रजा का कल्याण सम्भव है। यदि ये राजा के आतंक अथवा भय के वश वही बात कहें, जो राजा को प्रिय हो तो राज्य का नाश निश्चित ही है। गोस्वामी जी ने लिखा है :—

मंत्री, गुरु अरु वैद्य जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीन कर होइ वेग ही नास॥

अतः मन्त्रियों को इस प्रकार की स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए। जो राजा या राजसत्ताधारी, राजनीति के इन तत्वों को दृष्टि में न रखकर मन-मानी करते हैं वे अपनी कुनीति के कारण शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होते हैं। महात्मा तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है :—

बंटक करि करि परत गिरि, साखा सहस खजूर।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय, सो कुचालि भवभूरि॥

खजूर की शाखाएँ छाया देने के स्थान में काँटे बिखेरती हैं तो शीघ्र ही सूख-सूख कर गिर भी जाती हैं। ऐसी ही, कुनीति करने वाले लोगों की भी दशा होती है। अतः राजा को कुनीति से सदा बचना चाहिए। शत्रु के संबन्ध में कर्तव्य की तुलसी ने बड़ी सुन्दर व्याख्या, एक उदाहरण-द्वारा की है।

शत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि, पग डगमगत, चपरि चहूँ दिसि धाउ।

शत्रु को सिर पर अर्थात बराबर समझ रखना चाहिए, जैसे पानी नाव को रखता है, पर जैसे ही उसे निर्बल देखे, उस पर आक्रमण कर, विनष्ट भी कर देना चाहिए। ये सब राजनीति की महत्वपूर्ण बातें हैं। इस प्रकार के अनेक विचार हमें तुलसी की रचनाओं में मिलते हैं।

राम ने इन अनेक राजनीति के तत्वों का पूर्ण ज्ञान करके तब अपना मार्ग निश्चित किया था, जिसमें बल, नीति के साथ-साथ धर्म और शील का

प्रमुख स्थान था। राजा को सेना, गढ़, रथ, अस्त्र-शस्त्र-संबन्धी वाह्य सामग्री के अतिरिक्त आन्तरिक गुणों की विशेष आवश्यकता होती है, जो राम के पास थे। विभीषण के चिन्तित होने पर राम ने जिस 'विजय रथ' का वर्णन किया है, वह इन्हीं आन्तरिक गुणों का द्योतक है। वे कहते हैं :—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यदंन आना।
सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य, शील, दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रज जोरे।
ईश, भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म सन्तोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धरममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ कोउ ताके॥

अतः विजय के लिए वाहिनी, गढ़, अस्त्र, शस्त्र आदि पर्याप्त नहीं। शौर्य, धीरता, सत्यशील, बल, विवेक, दम, परोपकार, क्षमा, दया, बुद्धि, विज्ञान, निर्मल दृढ़ मन, यम, नियम आदि का पालन तथा साधु सेवा, आवश्यक गुण हैं। इन्हीं से विजयी की शोभा होती है और ऐसा जयी शत्रुहीन होता है।

राम की अपूर्व शक्ति के साथ इन सब गुणों का समावेश होने के कारण ही उनके राज्य की इतनी महत्ता है। राम का राज्य आदर्श राज्य, है। आज हम जब राजतंत्र के पूर्ण विरोधी हैं और प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा शासन चाहते हैं, तब भी हम रामराज्य की ही कल्पना करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वह आदर्श राज्य है। राजा भी आदर्श और प्रजा भी आदर्श है। जिन राम के संचालन में हनुमान से योद्धा, रावण से उसकी लंका में लड़ना अपने जीवन की सफलता मानकर यह कहे कि:—

काल करम दिगपाल, सकल, जग जाल जासु करतल तो।
ता रिपुसों पर भूमि रारि रन जीवन-मरन सुफल तो।

(गीतावली)

उन राम के प्रति प्रजा और सैनिकों का सहज-स्नेह प्रगट हो जाता है। अतः तुलसी का रामराज्य का वर्णन, अत्युक्ति पूर्ण नहीं, वह जीवन का सत्य जान पड़ता है।

रामराज्य समत्व का राज्य था। उसके इस आदर्श को प्रकट करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है—"बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥" उसमें ऊँच नीच का भेद न था, आज भी हमारा यही उद्देश्य है। वर्णाश्रम तथा अपना अपना धर्म सभी पालन करते थे। कोई भी भय-शोक-रोगग्रस्त न था। परस्पर सभी प्रीति करते थे। अल्पायु में मृत्यु नहीं होती थी। कोई पीड़ा और अनाचार न था। कोई निर्धन और दरिद्र न था। बन और उपवनों के वृक्ष समय पर फल-फूल देते थे। पशु-पक्षी स्वच्छन्द विहार करते थे। पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण थी। पहाड़ों में अनेक प्रकार के मणियों और बहुमूल्य पदार्थों की खानें प्रकट हुई थीं। बादल समय पर वृष्टि करते थे। सूर्य उतनी ही गर्मी देता था, जितनी आवश्यकता थी। कहने का तात्पर्य यह है कि शासक के पुण्य धर्म और प्रताप से सभी जनता सब प्रकार सुखी थी। किसी को भी दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट नहीं होते थे। यह संक्षेप में रामराज्य का रूप और तुलसी का राज्यादर्श है।

यदि हम ध्यान से देखें तो यही आजकल का हमारा भी राज्यादर्श है। आज बीसवीं शताब्दि में हम राजतंत्र और साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं। उसका कारण यही है कि राजा और राजतंत्र निकम्मे हो चुके हैं और जनतंत्रात्मक राज्य ही एकमात्र उपाय रह गया है। व्यवहार में हमारा उद्देश्य और आदर्श वही है, जो तुलसी का था। हम आज भी रामराज्य में रहने के लिए ललकते हैं और उसे अपनी पावन वसुन्धरा पर फिर से स्थापित करना चाहते हैं। जो भी रामराज्य का मर्म समझते हैं, वे चाहे किसी धर्म के और जाति के क्यों न हो, उसका विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि उसमें सब को सच्चा सुख है। हाँ, कपटी, अन्यायी और अत्याचारियों के लिए वह अवश्य दुःखदायी है। अतः यदि हम रामराज्य अर्थात् सुखकर स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें ऋषिकल्प महात्मा तुलसीदास-द्वारा बताए राजनीतिक तत्वों को समझ कर व्यवहार में लाना चाहिए। शासक में राम के गुण और जनता में उनकी प्रजा के गुण आना आवश्यक हैं। तभी हम पुनः सुखी और समृद्ध होने का स्वप्न सच्चा कर सकते हैं।

रामराज्य की धारणा

जिस राम-राज्य की स्थापना का आज हम प्रयत्न कर रहे हैं और जिसका स्वप्न गाँधी जी ने देखा था, उस राम-राज्य की धारणा, तुलसी के 'मानस' की धारणा है। उनकी यह धारणा आदर्शात्मक और पूर्ण है, परन्तु अव्यवहारिक नहीं। आज की परिस्थितियों में तुलसी की धारणा का राम-राज्य स्थापित करना एक मनुष्य का काम नहीं है। वरन्, वह सभी जनों का कार्य है। उसमें प्रत्येक कार्य और व्यक्ति के लिए अपने-अपने कर्तव्यों के संकेत हैं, जिनका पालन करने पर ही राम-राज्य की स्थापना सम्भव हो सकती है। यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि तुलसी की धारणा राज-तन्त्र पर आधारित होती हुई भी आज हमारे लिए कैसे उपयोगी हो सकती है? उसमें तो—'साधु सुजान सुशील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला।' कह कर राजा को ईश्वर का अंश माना गया है, जो आज की धारणा के लिए नितान्त असम्भव जान पड़ता है। अतएव तुलसी का राम-राज्य केवल स्वप्न ही रहेगा, यथार्थ नहीं हो सकता है। वैसे तो जितनी भी आदर्शात्मक धारणाएँ होती हैं, जीवन में उनको उतारना अंशतः ही सम्भव होता है। परन्तु देखना यह है कि उस धारणा में जो कल्पनाएँ हैं वे संभाव्य हैं या नहीं, यदि वे सम्भाव्य हैं तो यदि आज उसका एक अंश पूरा होता है तो कल दूसरा अंश भी पूरा होगा और अवश्य होगा, यदि हमने सचाई और लगन से काम लिया। ईश्वर के अंश-रूप राजा को मानने में तुलसी ने अपने समय की आस्था को या पूर्ववर्ती धारणा को व्यक्त किया है। आज उसे उस रूप में मानने की आवश्यकता नहीं। फिर भी उसके भीतर जो पदाधिकारी और योग्य साधु-सज्जन पुरुष हैं उनके प्रति सम्मान और विश्वास का भाव प्रकट किया गया है। तुलसी ने जहाँ राजा को ईश्वर का अंश कहा है वहीं उनकी कृतियों में राजा के लिए ही कुछ अन्य विश्लेषण भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए उनकी दो-एक पंक्तियाँ देखिये :—

शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय। नृपति सुसेवित पुनि-पुनि सेइय।
राखिय नारि जदपि उर माहीं। नृपति, शास्त्र, जुबती बस नाहीं।

× × × ×

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पहु पाल।

ऐसे ही अन्य कथन हैं जो सामान्यतया राजा के प्रति तुलसी अच्छी धारणा को प्रकट नहीं करते। हाँ, राम जैसे राजाओं की बात दूसरी है।

राजा हो चाहे किसी देश का राष्ट्रपति, जनता की सम्मान भावना और विश्वास उसके चुने जाने पर आवश्यक है। सजग विश्वास और सद्गुणों की प्रशंसा किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति को न्यायपूर्ण सत्कर्तव्य-पथ पर चलने की प्रेरणा देती रहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। तुलसी का भी राजा के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार था। वैसे तुलसी के राम-राज्य के आदर्श राजा राम हैं। उनमें अपने वैभव, ऐश्वर्य या राजपद का मान कभी नहीं है। सम्मिलित उत्तरदायित्व-पूर्ण राज्य-प्रबन्ध उनके शासन की विशेषता है। उनका शासन प्रेम, कर्तव्यपालन और मर्यादा-निर्वाह के बूते पर चलता है। जो स्वभाव से ही धर्म में रत हो, वही वास्तव में शासनसूत्र अपने हाथों में ले सकता है। इस संबंध में भरत के वाक्य स्मरणीय हैं:—

कहहुँ साँच सब सुनि पतियाहू।
चाहिय धरमसील नर नाहू॥

धर्म-शीलता में राम की बराबरी कौन कर सकता था? जिसने घोषित राज्याभिषेक के समय बनवास का संकेत पाकर माता-पिता की आज्ञा पालन के लिए चौदह वर्ष वन में रहने का व्रत लिया। भाई तथा समस्त अवधवासियों के चित्रकूट में वापिस लाने के लिए जाने पर भी जो सत्य से न डिगा। आततायी राक्षसों की दुष्टता और उनके द्वारा खाए ऋषिमुनियों की अस्थि-ढेरी को देखकर उन्हें निर्भय करने का प्रण किया। किष्किन्धा और लंका के राज्य जीतकर भी उनपर अपना अधिकार न करके साधु प्रकृति वाले प्रजापालक उत्तराधिकारियों को सौंप दिया; उन राम से बढ़ कर और कौन राजा हो सकता है? अतः तुलसी की दृष्टि से राजा वही हो सकता है। जो राम जैसा त्यागी हो, जिसका स्तवन करते हुए तुलसी ने अयोध्या कांड में लिखा है।

प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतस्तथा न मम्ले बनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

राजा के लिए और भी गुण आवश्यक हैं, जो राम में विद्यमान हैं।

राजा को बलवान, सुन्दर, धीर, शान्त, गम्भीर, उदार, शीलवान और स्नेह पूर्ण होना चाहिए। अतः तुलसी के रामराज्य की पहली विशेषता यह है कि जिसके हाथों में देश का शासन हो उसका राम के समान सद्गुण-सम्पन्न होना चाहिए।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि कोई भी राम के समान सद्गुण-सम्पन्न न हो तब किस के हाथ में शासनसूत्र देना चाहिये? तुलसी ने इस प्रश्न का भी उत्तर दे दिया है। जब राम बनवास की अवस्था में हैं तब अयोध्या का शासन सूत्र 'भरत' के हाथ में है। भरत के भीतर राम की समस्त विशेषताएँ और गुण नहीं, परन्तु एक बात जो भरत के समान, प्रत्येक सज्जन अपने भीतर जाग्रत कर सकता है वह राम के गुणों को हृदयङ्गम करना है। इसके लिए आवश्यक यह है कि वह राज्य को राम की थाती समझ कर काम करे। राम वे हैं जो सभी में रमे हुये हैं। और तुलसी ने अपने 'मानस' में उन्हें पूर्ण साकार भी कर दिया। अतः उनकी थाती समझने में किसी को कठिनाई भी न होनी चाहिये। राम जनता में रमे हैं। अतः वह राज्य जनता की थाती है। यह भाव ऐसे शासक के लिये आवश्यक हैं। भरत ऐसा ही करते हैं।

जटा जूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साथरी सँवारी।
असन वसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥
नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥

अतः शासक के लिए आवश्यक है कि यह बात सोच कर कि राम इस समय क्या करते, अपना कर्तव्य पूरा करें। इस प्रकार का राज्य होने पर रामराज्य की स्थापना कठिन नहीं। यह एक व्यक्ति के लिये नहीं, जितने भी अधिकारी वर्ग हैं, सब के लिए आवश्यक है। राम के चरित्र को देखकर राजा के अन्य अनेक कर्तव्य समझे जा सकते हैं।

अब प्रजा या जनता के कर्तव्य आते हैं। एक पुरानी उक्ति है 'यथा राजा तथा प्रजाः' अतः पहले सुधरना शासक को आवश्यक है। जनता और प्रजा को नहीं। वह तो अपने आप सद्गुणों को देख कर सुधरेगी। जिन राम के गुणों का वर्णन तुलसी ने अपने समस्त 'रामचरित मानस' में किया है। उनकी प्रजा की भी विशेषताएँ हैं। उनमें परस्पर वैर नहीं, द्वेष नहीं अतएव एक

दूसरे को घटकर या बढ़कर समझने की भावना नहीं। समस्त विषमता नष्ट हो गई। तुलसी कहते हैं :—

वरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहि भय सोक न रोग॥

वर्ण और आश्रम-व्यवस्था, की पूर्णता तभी देखने को मिलती है, जब कि विषमता दूर हो जाये। अन्यथा एक वर्ण अथवा आश्रम के लोग अपने को बढ़कर समझने लगते हैं। भारतवर्ष में जो आजकल और पिछले युगों में वर्णाश्रम व्यवस्था दूषित हो गई, उसका कारण यही वैषम्य, वैमनस्य और ईर्ष्या-द्वेष का भाव है। राम-राज्य के वर्णों या आश्रमों के व्यक्तियों में यह बात नहीं। अतः अपने धर्मों और कर्तव्यों में लोग संलग्न हैं।

इसके अतिरिक्त सभी स्त्री और पुरुष गुणी और चतुर हैं। सब ज्ञानवान हैं। सबके भीतर कृतज्ञता का भाव है तथा कपट-चातुरी नहीं। सभी लोग उदार और परोपकारी हैं, अपने स्वार्थ में लगे रहने वाले नहीं। स्त्री और पुरुष में परस्पर स्नेह भाव है। सभी गुण-ग्राहक और दोषविकारों को दूर करने में प्रयत्न शील हैं।

इस प्रकार राजा प्रजापालक और सद्गुण-सम्पन्न है। समाज के विकास और सुख एवं समृद्धि का जो सीधा मार्ग है, उसका अवलंबन सभी लोग सचाई के साथ कर रहे हैं। राजा और प्रजा की इस सचाई और प्रेम भाव के कारण सभी की जो स्थिति हैं, वही राज्य का मुख्य आकर्षण है। राम-राज्य की यह तीसरी विशेषता है कि सभी जनता सुखी और समृद्ध है इस सुख और समृद्धि का वर्णन तुलसी के शब्दों में सुनिए :—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम-राज नहि काहुहिं व्यापा।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
रामराज्य कर सुख संपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा॥

यह सुख और समृद्धि, राजा और प्रजा दोनों के सद्व्यवहार का परिणाम है। आज कल हम भ्रमवश समझते हैं कि सद्व्यवहार, सुख समृद्धि का परिणाम है। वास्तव में बात उल्टी है। रामराज्य में राम ने अपने जीवन से सबको इसी सद्व्यवहार की शिक्षा दी और सभी ने उसे ग्रहण किया है। अतएव समृद्धि

और सुख, सद्व्यवहार का परिणाम है। प्रकृति भी उस सुख-समृद्धि में योग देती है, देखिए:—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक संग गज पंचानन॥
कूजहिं खगमृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं वन करहिं अनन्दा॥
लता विटप माँगे मधु चवँहीं। मनभावतौ धेनु पय स्रवहीं॥
विधु महि पूर मयूखन्हिं रवि तप जेतनइ काज।
माँगे वारिद देंहि जल रामचन्द्र के काज॥

यह राम-राज्य का प्रताप है। नदियों में बाढ़ें आना, अकाल पड़ना, टिड्डी आना आदि ईति-भीति राम-राज्य में नहीं। ये बातें तुलसी के विचार से व्यतिक्रम के लक्षण हैं। राम के शासन काल में सभी कुछ व्यवस्थित है। अतएव प्रकृति का क्रम भी यथापेक्षित है। विपरीत नहीं। चेतन की मर्यादा और शक्ति तथा उसका चरित्र, जड़ प्रकृति को व्यवस्थित करने की पूरी शक्ति रखता है। और यदि चेतन ही गड़बड़ है, तो जड़ प्रकृति तो गड़बड़ होगी ही। राम-राज्य का चेतन तत्व अपनी मर्यादा को सँभाले है। फलस्वरूप जड़ अनुकूल है, विध्वंसकारी नहीं। यदि इस प्रकार प्रकृति के तत्व अनुकूल रहें और चेतन मानव, द्वेष और वैर भाव को छोड़कर अपनी निध्वंसात्मक दृष्टि का नाश करके, स्नेह भाव को जाग्रत करें, तो आज भी राम-राज्य धरती पर उतर सकता है। वह कोई बाहर से आई वस्तु नहीं, वरन् हमारे बनाने से बनने वाली स्थिति है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि तुलसी की धारणा का रामराज्य फिर से पृथ्वी पर लाने का सच्चा प्रयत्न करें।

लोक-जीवन और संस्कृति

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नहीं था, वरन् उसके आदर्श की ओर संकेत करना था। इसलिये राम के चरित्र का वर्णन करने में प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कहीं भी नहीं मिलता, साथ ही साथ अपने काव्य संबंधी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'प्राकृत जन' के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में बहुत विस्तारपूर्ण, व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जनजीवन के वर्णन की आशा हम कर ही नहीं सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना में जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिये गौणरूप में प्रकरान्तर से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है। पर, संस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अतः उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों में रामचरित के माध्यम से बराबर हुआ है।

लोक-जीवन बड़ा व्यापक है। इसके दो पक्ष—ग्राम्य जीवन और नागरिक जीवन—माने जा सकते हैं और जब हम समस्त लोक-जीवन को एक साथ लेते हैं तो हमारे सामने न तो विशिष्ट ग्राम्य जीवन ही आता है और न विशिष्ट नागरिक-जीवन ही; वरन् उसके भीतर दोनों ही समाजों में चलते हुए जीवन की विशेषताएँ सामने आती हैं। लोक-जीवन के भीतर प्रायः ऐसी बातों का ही चित्रण रहता है जो ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार के समाजों के भीतर देखने को मिलती हैं। हम यह कह सकते हैं कि लोक-जीवन न तो ग्राम्यता से युक्त है और न नागरिक वैयक्तिकता से। इसके भीतर ग्राम्य नागरिकता है। यदि हम और अधिक स्पष्ट करें तो यह कह सकते हैं कि ग्राम्य जीवन सामुदायिक जीवन है। प्रायः वहाँ के कामों में ग्रामों के समस्त जन सम्मलित होते हैं; यदि कोई उत्सव, पर्व या त्योहार है अथवा किसी के यहाँ कोई सांसारिक समारोह है तो गावों का सारा समाज उसमें सम्मिलित होगा। किसी एक व्यक्ति की आपत्ति, विपत्ति में भी सभी सम्मिलित होते हैं। साथ ही साथ सम्पत्ति और वैभव भी वहाँ पर प्रायः सामाजिक रूप में होता है। यदि कोई वस्तु एक के यहाँ अधिक

उपजी तो वह सबको बाँट कर उसका उपभोग करता है। इस प्रकार दूसरे के सुख-दुख में अपने सुख-दुख का अनुभव करना ही ग्राम्य जीवन की विशेषता है। नगर के जीवन में एकान्तिक दृष्टिकोण प्रधान रहता है। वहाँ पर एक ही घर के रहने वाले एक दूसरे को नहीं जानते। अतः यह अलगत्व का भाव नागरिक जीवन को विशेष बुद्धि-जीवी बना देता है। ग्राम्य जीवन में बुद्धि का उतना कार्य नहीं जितना कि भावना का। तुलसीदास जी ने अपने लोक-जीवन के चित्रण में ग्राम्य और नागरिक विशेषताओं का सामंजस्य स्थापित किया है।

इसका बड़ा स्पष्ट प्रमाण हमें राम के चरित्र में प्राप्त होता है। तुलसी ने राम की प्रशंसा उनके शील के कारण की है। शील, बौद्धिक और हार्दिक गुणों का समन्वय है। इसके भीतर कर्त्तव्य और प्रेम दोनों का योग है। यही ग्राम्य और नागरिक गुणों का समन्वय भी है। और इसी समन्वय के कारण ही राम इतने लोक प्रिय है। जिसके लिये तुलसी कहते हैं :—

"सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।
सिसुपन ते पितु-मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौंहैं सपनेहुं लखेउ न काउ॥

इस प्रकार तुलसी की दृष्टि से लोक-जीवन के आदर्श में दोनों प्रकार की विशेषताओं का समन्वय होना चाहिए।

तुलसी की रचनाओं में लोक-जीवन की झलक कई रूपों में देखने को मिलती है। परन्तु उसकी झाँकी के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है। लोक-जीवन की लीला-भूमि प्रकृति और ग्राम्यस्थली का वर्णन भी हमें यथार्थ रूप में नहीं मिलता। हाँ हमारी कुछ पुण्य भूमियों की पावन झलक दिखाई देती है। गोस्वामी जी की 'कवितावली' में प्रयाग, काशी, सीतावट, चित्रकूट आदि के वर्णन हैं। चित्रकूट के प्रति भारतीय लोक-जीवन का बड़ा आकर्षण भी है। तभी तुलसी कहते हैं :—

"चित्रकूट अति विचित्र, सुन्दर बन, महि पवित्र
पावन पय सरित तीर मल निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम
वाम अंग वामावर विस्व वन्दिनी।

वर विधान करत गान, वारत धन, मान प्रान,
झरना झरत झिंग झिंग झिंग जलतरंगिणी।
वर विहार चरन चारु पांडर चम्पा कचनार
करनहार वारपार पुर पुरंगिनी॥"

लोक-जीवन के प्राण राम के आ जाने पर चित्रकूट के वन को एक विशेष शोभा प्राप्त हो गई है, देखिये—

"आइ रहे जबते दोऊ भाई।
तब ते चित्रकूट कानन छबि, दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई।
उकठेउ हरित भये जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत, पलुहत विटप बेलि अभिमत सुखदाई।
सरित-सरनि सरसीरुह संकुल, सदन सवाँरि रमा जनु छाई।
कूजत विहँग, मंजु गुंजत अलि जात पथिक जनु लेत बुलाई॥"

तुलसी ने इस पवित्र भूमि की वर्षा और बसंत की विशिष्ट शोभा का भी वर्णन किया है। लोक-जीवन के नायक राम के विशेष निवास स्थानों का ही वर्णन गोस्वामी तुलसीदास का उद्दिष्ट जान पड़ता है। किष्किंधा में ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते समय वर्षा और शरद ऋतुओं के वर्णन के बहाने तुलसी ने लोक-नीति और व्यवहार में उपयोगी बहुमूल्य सूक्तियों की रचना की है जो आज भी लोक-जीवन के पथप्रदर्शन का काम करती है।

"भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी।
सिमिटि सिमिटि जल भरे तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहँ आवा।
सरिता सर जल निर्मल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।"

इस प्रकार लोक-जीवन की लीला-भूमि प्रकृति के सामान्य रूप का चित्रण न कर उन्होंने उससे जीवनोपयोगी तथ्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि से मानव-जीवन का महत्व बहुत बड़ा है। अतएव उसका पूरा उपयोग करने के लिए पूर्ववर्ती ज्ञान और लोक-परम्परा के आधार पर कर्त्तव्य कर्म निश्चित करना तथा उनको पूरा करने का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने इसके लिए लोक और वेद दोनों की आज्ञा का पालन करना आवश्यक बताया है। वेद, शास्त्रीय पक्ष है और लोक, उसका व्यावहारिक प्रचलित पक्ष। लोक-जीवन में प्रचलित परंपराओं का शास्त्रीय आधार प्रायः

खोजने पर भी नहीं मिलता है। चलन और प्रथा का महत्व लोक-जीवन में विशेष रूप से है। ये चलन-प्रथाएँ किसी वर्ग-विशेष की विशिष्ट जीवन-धारा की प्रगति को स्पष्ट करती हैं। ये प्रायः उस वर्ग के जीवन को सुलभ, सफल और आनन्ददायी बनाने के सामुहिक प्रयत्न है जिनमें द्वारा उस वर्ग में अधिक चेतना की अवस्था में विकास और परिवर्तन होते रहते हैं और चेतना की कुंठित अवस्था में उनका अन्धानुकरण मात्र रह जाता है। इन दोनों अवस्थाओं के दोषों को दूर करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने वेद और लोक, अर्थात् शास्त्र और प्रथा का समन्वय कर दिया है जिससे न शास्त्र ही समय-विरुद्ध हो सके और न प्रथा ही अन्ध-परम्परा मात्र।

तुलसी ने राम के जीवन की कथा में विभिन्न अवस्थाओं के संस्कारों का वर्णन करने से दोनों ही आधारों का बराबर संकेत किया है। उनके सांस्कृतिक वर्णनों में, जिनसे उनकी रचनाएँ भरपूर हैं, तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बराबर मिलती हैं। पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू, गीतावली, रामचरित मानस के संस्कार-वर्णन के प्रसंगों में हम इन बातों को देख सकते हैं।

इन वर्णनों की विशेषता यह है कि आज भी हमारे लोक-जीवन के व्यवहार ऐसे ही बने हुए हैं। हमारा ग्राम और नागरिक समाज इन क्रियाओं और प्रथाओं को आज भी अपनाता चलता है। तुलसी ने राम के सोलहों संस्कारों का वर्णन नहीं किया जिनका वेदों और स्मृतियों में उल्लेख हैं तथा जिनकी ओर हमारे समाज का ध्यान विशेषरूप से आर्यसमाज के आन्दोलन के बाद आकृष्ट हुआ है, परन्तु उन्होंने जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, कर्णवेध, उपनयन और विवाह-संस्कारों का विशेष वर्णन किया है और इनका आज भी हमारे समाज में बड़ा महत्व है। इस प्रकार इन संस्कारों का आँखों-देखा वर्णन करके उन्होंने हमारे लोक-जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ तुलसी की विभिन्न रचनाओं से देखिये—

आलेहि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो,
मोतिन्ह झालरी लाग चहूँदिसि झूलन हो।
गंगा जलकर कलस तौ तुरत मँगाइय हो,
जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो।

—(रामलला नहछू)

वर दुलहिन्हहि बिलोकि सकल मन रहसहिं।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं॥
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुसकर।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर॥

—पार्वती मंगल

चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भाँतिन्ह।
भोजन करत अवध पति सहित बरातिन्ह।
देहिं गारि नर नारि नाम लै दुहुँ दिसि।
जेवत बढ़ेउ अनन्द सोहावन सो निसि॥

—जानकी मंगल

नाम करन रघुवरनि के नृप सुदिन सोधाए।
घर घर मुद मंगल महा गुन गाय सुहाए॥
गृह, आँगन, चौहट, गली, बाजार बनाये।
कलसु चँवर, तोरन, धुजा, सुबितान तनाए॥
चित्र चारु चौकें रचीं लिखि नाम जनाए।
भरि भरि सरबर वापिका अरगजा सनाए॥

—गीतावली

रामचरित मानस से वर्णित विभिन्न संस्कार तो सर्वविदित हैं ही। इन समस्त संस्कारों का वर्णन लोक-जीवन की सुन्दर झलक प्रदान करता है। इसी प्रकार के वर्णन उत्सवों और त्यौहारों के हैं। राम के तिलकोत्सव तथा झूला के साथ दीपावली, फाग आदि के मनोहारी वर्णन रामचरित मानस और गीतावली को, लोक-संस्कृति का चित्रण करनेवाले ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इन वर्णनों की विशेषता हमारे सामुहिक और सामाजिक जीवन के सुदृढ़ संगठन में अन्तर्निहित है। इन संस्कारों, उत्सवों और त्यौहारों में समस्त समाज सम्मिलित होता है। अतः यह सामुहिक आनन्द के अवसर हैं। हमारा आज का समाज इस प्रकार के सामुहिक हार्दिक आनन्द के अवसरों को धीरे-धीरे खोता जा रहा है। ये निश्चित आनन्द के क्षण हमारे जीवन में नवीन प्राण, नवीन उत्साह तथा नवीन जीवनी-शक्ति फूँकते हैं और ये समाज के युवावस्था के लक्षण हैं। इसके अभाव में समाज की वृद्धावस्था स्पष्टतया परिलक्षित होने लगती है।

शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसी ने किया है उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न व्यक्तियों से व्यवहार और अभिवादन के प्रसंग हैं या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के साथ के व्यवहार हैं। इसमें सामान्यतया गुरु, मित्र, राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के साथ वार्तालापों के प्रसंग आते हैं। सुमंत्र, सचिव और राजा की बातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार-संबंधी अभिवादन सूचक शब्द 'जयजीव' का प्रयोग किया है जैसे—

देखि सचिव जयजीव कहि कीन्हेउ दंड प्रणाम ॥

× × ×

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये।
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल बचन सुनाये।

आदि उदाहरणों से स्पष्ट है। यह 'जयजीव' एक विशिष्ट शब्द है। जय तो अब भी प्रचलित है, पर जयजीव नहीं।

माताओं का बच्चों के प्रयाण या विलंब के बाद आगमन पर, उनके शिर सूँघने का उल्लेख भी तुलसी ने अपने ग्रंथों में किया है। यह प्रेमभाव का ही नहीं, वरन् कुशल-कामना का भी सूचक है।

कलात्मक सजधज के अनेक अवसर तुलसी-द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये हैं और सर्वत्र तुलसी की कला दृष्टि की बारीकी को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने संकेत रूप से वास्तु, चित्र, नृत्य, संगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु, विशेष रूप से मोहक विवरण, विवाह आदि संस्कारों में की गई कलात्मक सजधज के हैं। तुलसी की कला-संबंधी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण, रामचरित मानस में वर्णित जनकपुरी की सजावट के प्रसंग में हो जाता है। जिसका विवरण इस प्रकार है—

विधिहिं बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।
हरितमनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल ॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहि नहि चीन्हें ॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहि परइ सपरन सुहाई ॥

तेहि के रचि पचि बंध बनाये। बिच बिच मुकता दाम सुहाए ॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥
किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं ॥
चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं ॥
सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि ॥

इसी प्रकार के वर्णन अयोध्यापुरी में राम के लंका विजयोपरान्त लौट आने पर किये गये हैं तथा दीपोत्सव एवं हिंडोले आदि के प्रसंगों में भी तुलसी की कलात्मक सौन्दर्य-दृष्टि लोक-जीवन की उत्कृष्ट सौन्दर्य-दृष्टि के साथ मेल खाती है।

लोक-जीवन के चित्रण में इसी प्रकार युद्ध की यात्रा का भी वर्णन आया है। वानर-सेना के साथ राम का समुद्र के किनारे पहुँचना और समुद्र पार करना इसी के अंतर्गत है। भरत-प्रसंग में जो सभा चित्रकूट पर लगती है वह आधुनिक सभा या कान्फ्रेन्स का उतना यथार्थ रूप नहीं, जितना ग्राम-पंचायत का। उसी का यह वृहद् रूप सा जान पड़ती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वर्णन उन अनेक विश्वासों का है जो लोक-जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करते हैं और आज भी हमारे बीच प्रचलित हैं। जैसे निषादराज गुह के प्रसंग में छींक का उल्लेख नीचे की पंक्ति में हुआ है—

एतना कहत छींक भइ बायें। कहेउ सगुनिहन्ह खेत सुहाये।

इसी प्रकार अनेक सगुनों का वर्णन है—जैसा बालकांड में बरात-यात्रा के प्रसंग में आया है—

लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा। सुरभी सन्मुख सिसुहि पियावा।
सन्मुख आयेउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना ॥

आदि।

तुलसी की रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण बात लोक-जीवन के आदर्शों का संकेत है। इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के आदर्शों का

वर्णन है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी ने अपने 'मानस' में लोक-जीवन के ऐहिक आदर्शों में राजा, प्रजा, भाई, माता, पिता, पुत्र, गुरु, मित्र, स्त्री, सेवक, शत्रु सभी के स्वरूप को अंकित किया है जिसमें अलग-अलग कर्तव्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। वास्तव में तुलसी का प्रमुख उद्देश्य लोक-जीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना है। वे समाज के लोगों के सामने, राम के व्यक्तिगत तथा परिवार के लोगों के आचरण को उपस्थित करते हैं और इस दृढ़ता और विश्वास के साथ उसके कर्तव्य का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि हमारे लोक-जीवन की उलझनों और समस्याओं के सुलझाव में हमें उनका महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है और यदि हम राम की जीवन-गाथा के आदर्शों को ग्रहण करें, तो समस्त समस्यायें सुलझ जाती हैं।

इससे भी बढ़कर तुलसी का उद्देश्य लोक-जीवन के पारलौकिक आदर्श को व्यक्त करना है जिसका सार है—ईश्वर-भक्ति। तुलसी का विश्वास है कि भक्ति को अपनाये बिना, हमें अपने लोक-जीवन में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। रामगाथा के सभी आदर्श पात्र, विभिन्न भावों के ईश्वर भक्त हैं। दशरथ-कौशल्या में वात्सल्य भाव, भरत, लक्ष्मण, हनुमान, में भायप और सेवक भाव, सुग्रीव, विभीषण में सखा भाव, सीता में दांपत्य भाव, यहाँ तक कि रावण में वैर भाव की भक्ति देखने को मिलती है। यह जानते हुए कि खरदूषण का वध करने वाला साधारण व्यक्ति नहीं, रावण कहता है कि—"तौ मैं जाय बैर हठि करिहौं। बिनु प्रयास भवसागर तरिहौं।" वह जान बूझ कर यह भाव अपनाता है जिससे कि राम को एक क्षण के लिए भी न भुला सके। यही भक्ति का भाव ही रावण के चरित्र में अद्भुत दृढ़ता का समावेश कर सका था जिससे कि वह कुटुम्ब का नाश होने पर भी विचलित न हुआ और हँसता रहा। इसी ने सबसे प्रेम करने वाले राम को उसके प्रति बैर भाव से प्रेरित किया और राम ने न केवल दर्शन दिये, वरन् उसका उद्धार किया। अतः लोक-जीवन के समस्त भावों को भक्ति से ओतप्रोत करना ही उनका उद्देश्य था। यह उस समय सगुण भक्ति-आन्दोलन का व्यापक दृष्टिकोण था।

तुलसी की दृष्टि से भक्ति मानव-जीवन का सार है। मानव-जीवन बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। यह जन्म सुर-दुर्लभ है। तुलसी ने यह बात स्वयं राम के मुख से कहलायी है कि मानव-जीवन ही, साधन, धर्म और मोक्ष का द्वार

है। इसको प्राप्त कर जिसने परलोक न सँभाला, उसका जीवन व्यर्थ है। विषयों का भोगमात्र इसका उद्देश्य न होना चाहिए। इस जीवन को सफल बनाने के लिए भक्ति आवश्यक है।

इस प्रकार तुलसी ने हमारे लोक-जीवन की विभिन्न झाँकियों-द्वारा इसका बड़ा ही मनोहारी, यथार्थ और अनुकरणीय चित्र खींचा है। उनके अंतिम निष्कर्षों से चाहे हम आज सहमत न हों, क्योंकि इस लोक को छोड़, परलोक की बात सोचने का अवकाश आज कल हमें नहीं है—परन्तु, इनके लौकिक आदर्शों के द्वारा आज भी हमारे समाज का यथार्थ लाभ और कल्याण हो सकता है, इसमें संदेह नहीं।

उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व के इस समीक्षण से अनेक बातें स्पष्ट होती हैं, जिनको ध्यान में रखकर न चलने से हम उनके किसी एक पक्ष की गहराई में ही गोते लगाते रहते हैं और उस विशाल रत्नाकर के दूसरे छोर पर क्या है, यह नहीं जान सकते हैं। साथ ही 'रामचरित मानस' उनकी महती कृति है, फिर भी उनकी अन्य कृतियाँ भी अपनी अलग विशेषताओं से संपन्न हैं, यह भी हमारे लिए समझना आवश्यक है। तुलसीदास के दृष्टिकोण में भक्तिभाव प्रधान रूप से होते हुए भी, उनकी भावना सामाजिक है। अतएव देश और समाज की रीति, नीति और संस्कृति का जो रूप उन्होंने हमारे सामने रखा है, उससे उनके सामाजिक और राजनीतिक आदर्श स्पष्ट होते हैं। वे समाज को जिस रूप में देखना चाहते थे, वह राम राज्य का रूप है जिसमें राजा के कर्तव्य के साथ जन-समूह और प्रजा की कर्तव्य-परायणता भी आवश्यक है। गोस्वामी जी ने जिस रामराज्य का चित्रण किया है उसको व्यावहारिक भी बना दिया है। इस प्रकार के रामराज्य की स्थापना के लिए यह आवश्यक नहीं कि राम ही राजा हों, सभी वह स्थापित हो सके। जिस प्रकार चौदह वर्ष तक भरत राम के आदर्श को सामने रखकर त्याग और सेवा भाव से शासन सँभाले रहे, उसी प्रकार शासन-सूत्र जिसके हाथ में हो, वह यदि अपने को भरत समझकर शासन को राम की थाती के रूप में स्वीकार कर प्रबंध करे तो निश्चय ही वह कल्पना का राज्य वास्तविक हो सकता है। इसी प्रकार प्रजा भी राम के परिवार और जनता का अनुगमन करे, तो स्नेह की ऐसी पारिवारिक व्यवस्था कायम हो सकती है जिसमें शासक राजा न होकर परिवार का ही पिता, भाई आदि रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। अतः रामचरित मानस निश्चयतः इस प्रकार का संदेश ही नहीं देता, वरन् उस प्रकार का वातावरण भी बनाने का प्रयत्न करता है।

तुलसी की कृतियों की दूसरी सामाजिक देन है, दासता से मुक्ति। संसार को क्षणभंगुर मानकर, उसके प्रति निर्लेप और निर्वेद का भाव जगाकर इन संत और भक्त कवियों ने हमारी आर्थिक दासता से हमें मुक्ति प्रदान की है। पूर्णतया उनका

दृष्टिकोण आज चाहे हमें मान्य न हो और हम आर्थिक समृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहें, पर इसमें मतभेद नहीं हो सकता कि सामाजिक स्नेह के प्रगाढ़ बंधन के लिए मनुष्य को व्यक्ति का तिरोभाव करना होगा और उसके लिए यह निर्वेद आवश्यक है। तुलसी तीन प्रकार की ईषणाएँ, मनुष्य के सामाजिक स्नेह भाव के मार्ग में बाधक मानते हैं, वे हैं—सुत, वित और लोक संबंधी ईषणाएँ।* इन ईषणाओं से अर्थात् आर्थिक प्रलोभन से, परिवारिक पक्षपात भाव से और स्वयश के विस्तार के प्रलोभन से मुक्त होकर ही व्यक्ति सामाजिक हितू हो सकता है और समत्व का भाव विकसित कर सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा गांधी में यही भाव व्याप्त था। इस दृष्टि के विकसित होने पर परस्पर जो स्पर्द्धापूर्ण आर्थिक घुड़दौड़, समाज में चलती रहती है, वह समाप्त हो सकती है और एक धनहीन मानव में भी हीनता का भाव नहीं जग सकता। अतः तुलसी का दृष्टिकोण हमारी आर्थिक दासता से हमें मुक्ति प्रदान करता है जिसके कि हम आज स्वतंत्र होकर भी गुलाम हैं।

इसी प्रकार की मुक्ति उन्होंने मानसिक दासता से भी प्रदान की है। तुलसी के पूर्व और उनके समय में भी ज्ञान और कर्मकांड की रूढ़ियाँ प्रबल थीं। इन रूढ़ियों का भगवान बुद्ध ने खंडन एक बार किया था, पर वे फिर नये रूप में बन गई थीं। कर्मकांडी अपने को ऊँचा और दूसरे को नीच समझता था। ज्ञानी भी अहं के दर्शन के प्रयत्न में अहंकारी बन बैठा था। और ज्ञान-हीन मनुष्यों को पशु से भी बढ़कर मानता था। स्वयं तुलसी का अपना अनुभव था :—

कर्मठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान बिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय, गो राम दुवारे दीन॥
(दोहावली)

अतः उन्होंने इस प्रकार की रूढ़ियों की भित्तियों को ढहाकर भक्ति का मार्ग धनी, निर्धनी, ज्ञानी, अज्ञानी, सब के लिए सुलभ कर दिया। विधर्मियों के लिए भी इसके द्वार खुले थे। व्याध, गणिका, जवन, वानर, भालु, निसिचर किसी का भेदभाव न था। अहंभाव से युक्त होकर ज्ञानी नष्ट हो जाता है, यह

*सुत वित लोक ईषणा तीनी।
उत्तरकांड।

संतों का अनुभव था। तुलसी ने लोमश के उदाहरण-द्वारा यही व्यक्त किया है और कबीर ने भी कहा है—

ज्ञानी मूल गँवाइया, आपुन भे करता।
ताथें संसारी भला, जो रहा डरता॥*

रूढ़ियों के खंडन में तुलसी ने कबीर की भाँति उग्रता ग्रहण नहीं की; फिर भी उन्होंने असामाजिक रूढ़ियों का खंडन कर एक उदार दृष्टिकोण का विकास किया और मानसिक दासता को हटाकर व्यर्थ के भेदभाव को दूर किया। यहाँ पर हमें उनके वर्णाश्रम-व्यवस्था-संबंधी प्रश्न को नहीं उठाना चाहिए; क्योंकि उसका वास्तविक उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था कायम करना है, भेदभाव बढ़ाना नहीं और वह धर्म और गुणों की हीनता के अभाव में कायम नहीं रह सकती। इस प्रकार आर्थिक और मानसिक दासता से मुक्ति प्रदान कर तुलसी ने वास्तविक स्वावलंबन एवं स्वतंत्रता की भावना का विकास किया।

इसी प्रसंग में तीसरी महत्वपूर्ण देन उनकी, जीवन की पूर्ण-कल्पना है। जो न कबीर कर सके न सूर और न कालिदास और न भवभूति ही। जिसे आदि महाकवि वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया था; पर उसका परिष्कार करके समाज के अनुरूप बनाकर तुलसीदास ने हमारे सामने, राम के चरित के रूप में प्रस्तुत किया। बाल्यकाल से लेकर राज्याभिषेक तक, जितनी विविध परिस्थितियों में रामका जीवन विकसित हुआ, वे केवल जीवन की विविध रूपता ही प्रस्तुत नहीं करतीं, वरन् हृदय को मंथन कर देने वाली गंभीरता और विषमता भी उपस्थित करती हैं। हम रामचरित मानस को केवल साहित्यिक रचना के ही रूप में नहीं देख सकते। वरन् अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है कि हम घटनाओं से दूर नहीं, उन्हीं के बीच खड़े हैं और परिस्थिति मुँह फैलाये हमारे सामने, हमारी कर्तव्य-दृष्टि और विवेक को निगल जाने के लिए खड़ी है। ऐसे धर्म संकट ही जीवन को गंभीरता प्रदान करते हैं। विश्वामित्र के आगमन पर दशरथ, धनुष न टूटने पर जनक, बनवास का बरदान माँगने पर दशरथ, राम, कौसल्या, सीता, आदि समस्त परिवार, चित्रकूट में भरत और राम, बन में सीताहरण पर राम और लक्ष्मण, समुद्र तट पर राम, शक्ति लगने पर राम, अशोक बाटिका में सीता आदि गंभीर धर्म

---

* कबीर ग्रंथावली, साखी ४०४

संकटों में पड़ते हैं, पर अपने शील और विवेक से उसके पार हो जाते हैं। ऐसे ही माता-पिता, भाई, सास-बहू, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, राजा-प्रजा आदि विविध संबंधों का चित्रण और निर्वाह, बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक के सुख-दुःख-पूर्ण उत्सव और संस्कार, राज्याभिषेक, धनुषयज्ञ, चित्रकूट और रणक्षेत्र के समारोह, सरल से सरल और कुटिल से कुटिल व्यक्ति के साथ कर्तव्य आदि जीवन के बहुमुखी पक्ष हैं जिनके मार्मिक चित्रण करके गोस्वामी तुलसीदास ने हमारे मानसों को परिपूर्ण कर दिया है। इस जीवन की पूर्णता और सजीवता के रूप का पता हमें तब लगता है जब कि राम की जीवन गाथा, कोई अन्य कवि प्रस्तुत करता है और उसे पढ़ कर हमें ऐसा लगता है कि तुलसी के चित्रण का यह पासंग भर भी नहीं हैं। यह है उस महान् कवि की सामाजिक देन, जो हमारे संस्कार और कल्पना में उतर गई है।

ऐसे कवि, महात्मा, भक्त, दार्शनिक, सुहृद, दूरदर्शी, तथा करुणापूर्ण मानव और उसके कृतित्व के संबन्ध में जितना भी कहा जाय थोड़ा है। बहुत कहा गया है और अभी बहुत कहने को है। अतः मैं भी उन्हीं मनस्वी महात्मा के दूसरे प्रसंग में कहे गये शब्दों के उल्लेख के साथ इसे समाप्त करता हूँ—

'थोरे मँह जानिहहिं सयानें।'

संग्रह-खण्ड

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हू ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, तिन्हैं किमि कै बनवास दियो है?॥१२॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥१३॥

सुन्दरकांड

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्यो अब नगर प्रजारी है॥१४॥
बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।
बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो।
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो॥
काहे की कुसल रोषे राम बामदेवहू के,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो॥१५॥
बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति वानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध बानर, बिदिस दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥

मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए ?
लेहु अब लेहु, तव कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए ॥१६॥
एक करै धौज, एक कहै काढ़ो सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहै बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक,
देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।
तुलसी कहत एक नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो ॥१७॥
हाट बाट हाटक पिघिल चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
बाबरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों ॥१८॥

लंका कांड

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम बिधिधाम तेहि राम सों,
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥१९॥

आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि, भयो
सोर चहुँ ओर लंका आए जुबराज के।
एक काढ़ैं सौज, एक धौज करैं कहा ह्वै है,
पोच भई महा सोच सुभट समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात बात जात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के॥२०॥

रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै?
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥२१॥

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रन रौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए॥२२॥

उत्तर कांड

विषया परनारि निसा-तरुनाई सु पाइ परयो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे॥
ममताबस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाइ निसा रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥२३॥

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥२४॥

सो जननी, सोपिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सोहित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब, चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो॥२५॥

सियराम-सरूप अगाध अनूप विलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहिं को थलु है॥
मति रामहिं सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहिं को बलु है।
सबकी न कहै तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥२६॥

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग, संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥२७॥

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जो भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै!
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकी नाथ मया करिहै॥२८॥

आपु हौं आपु को नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकी नाथ पढ़ायो॥
सोई है खेद जो वेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तौ सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥२९॥

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै हौं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाँई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥३०॥

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को॥

भयो करतार बड़े क्रूर को कृपालु, पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
तुलसी बनी है राम गवरे बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥३१॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को ॥३२॥

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-वन अहन अहेट की॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥३३॥

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों, कहाँ जाई का करी?
बेद हू पुरान कही, लोकहु बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥३४॥

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत हैं।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत हैं।
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु हैं अभागी भूरिभागी डाटियत हैं।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत हैं॥३५॥

कनक कुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय विसुद्धतर॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि॥
कैवल्य सकल फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस॥३६॥

सीस बसै बरदा, बरदानि चढ्यो बरदा घरन्यौ बरदा है।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास तहाँ शव लै मरे दाहै॥
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है।
राँक सिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है॥३७॥

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि वेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥३८॥

दोहावली

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥१॥
राम नाम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून ॥२॥
नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदास ॥३॥
राम-नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद-बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥४॥
दंपति-रस रसना दसन परिजन, बदन सुगेह।
तुलसी हरहित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥५॥
बरषा ऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास।
राम-नाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥६॥
रहै न जल भरि पूरि, राम! सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि-भरि मूठी मेलिए ॥७॥
हरे चरहिं, तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥८॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥९॥
कर्मठ कठमलिया कहँ, ज्ञानी ज्ञान बिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो रामदुआरे दीन ॥१०॥
तुलसी राम जो आदर्यो खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धर्यो, धर्यो सु धर्यो धरोइ ॥११॥
तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥१२॥

चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरे चारि को दानि चारि चख चाहु ॥१३॥

रघुपति कीरति-कामिनी क्यों कहै तुलसीदास ?
सरद-अकास प्रकास ससि चारु चिबुक-तिल जासु ॥१४॥
भुज-तरु कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रवेस ।
बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस ॥१५॥

बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि ।
राम कृपा जल सींचिये, बेगि दीनहित लागि ॥१६॥
अपनी बीसी आपुही पुरिहिं लगाये हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥१७॥
अंक अगुन, आखर सगुन समुझिय उभय प्रकार ।
खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु बिचार ॥१८॥

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ ।
तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ ॥१९॥
तुलसी चातक माँगनो एक, एक घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥२०॥
प्रीति पपीहा पयद की अगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ॥२१॥

चरग चंगुगत चातकहिं नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर ॥२२॥
सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहिं प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को ॥२३॥
कै लघु कै बड़ मीत भज, सम सनेह दुख सोइ ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाबिष होइ ॥२४॥

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहि सुरसरि-बारि ॥२५॥
उत्तम मध्यम नीच गति पाहन, सिकता, पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥२६॥

भस्वर बरषत कोससत बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर हृये, गएँ न पराइ ॥२७॥
सहबासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ?॥२८॥
सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति ॥२९॥
लोकरीति फूटी सहै, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै सो, आँधरो न होइ ॥३०॥
बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥३१॥
तुलसी मीठी अमी तें माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच ॥३२॥
तुलसी असमय के सखा धीरज, धरम, बिबेक।
साहित, साहस, सत्यब्रत, रामभरोसो एक ॥३३॥
कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि, बबूर।
बवहिं,नवहिं निज काज सिर.कुमति-सिरोमनि कूर ॥३४॥
जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥३५॥
अपजस-जोग कि जानकी, मनिचोरी की कान्ह ?।
तुलसी लोग रिझाइबो, करषि कातिबो नान्ह ॥३६॥
तुलसी जपै गुमान को हो तो कछू उपाउ।
तौकि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ ? ॥३७॥
तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता-सनमान।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥३८॥
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय।
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाइ ॥३९॥
तुलसी तीरत तीरतरु, बकहित हंस बिडारि।
बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरि हूँ बढ़ियारि ॥४०॥

प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥४१॥
काल बिलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि।
रबिहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध ब्यवहरहिँ बिचारि ॥४२॥

माली भानु किसान सम नीतिनिपुन नरपाल।
प्रजा-भागबस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥४३॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥४४॥

सुधा सुनाज, कुनाज फल, आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजाहित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ॥४५॥
कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सो कुचाल भव भूरि ॥४६॥

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥४७॥
सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥४८॥

रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहि नित नरनाहु ॥४९॥
मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिही नास ॥५०॥

उरबी परि कलहीन होइ, ऊपर कला प्रधान।
तुलसी देखु कलापगति, साधन-घन पहिचान। ५१॥
तुलसी तृन जल-कूल को निरबल, निपट निकाज।
कै राखे, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज ॥५२॥
रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै ? कलि-कुचाल पर प्रीति ॥५३॥
पात पात कै सींचिबो, बरी बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ? ॥५४॥

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं मूढ़ कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥५५॥
गौंड़ गँवार नृपाल महि, यवन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥५६॥
तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन? ॥५७॥
रामचन्द्र-मुख-चन्द्रमा चित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥५८॥
का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करे कुमाच ॥५९॥
मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥६०॥

गीतावली

(१)

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥१॥
अति पुनीत मधुमास, लगन-ग्रह-बार-जोग-समुदाई ।
हरषवंत चर-अचर, भूमिसुर-तनरुह पुलक जनाई ॥२॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि, नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥३॥
सुनि दसरथ सुत जनम लिए सब गुरु जन बिप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥४॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥५॥
मनि-तोरन, बहु केतु-पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध-सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥६॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित, चिर जिवौ तनय सुखदाई ॥७॥
बीथिन्ह कुंकुम-कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥८॥
अमित धेनु-गज-तुरग-बसन-मनि, जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥९॥
सुखी भए सुर-संत-भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।
सबै सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥१०॥
जा सुख-सिंधु-सकृत-सीकर तें सिव बिरंचि प्रभुताई ।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि, कौन जतन कहौं गाई ॥११॥
जे रघुबीर-चरन-चिंतक, तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥१२॥

(२)

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं ।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥१॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं ॥२॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं ।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥३॥

(३)

सोइये लाल लाडिले रघुराई ।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ॥१॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई ।
तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई ॥२॥
मूल मूल, सुर बीथि-बलि, तम तोम सुदल अधिकाई ।
नखत-सुमन, नभ-बिटप बौंडि मनो छपा छिटकि छबि छाई ॥३॥
हौं जँभात, अलसात, तात ! तेरी बानि जानि मैं पाई ।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥४॥
बछरु, छबीलो छगनमगन मेरे, कहति मल्हाइ मल्हाई ।
सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ॥५॥

(४)

जागिये कृपानिधान जानराय रामचंद्र !
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥१॥
अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससांक किरनहीन,
दीन दीप जोति, मलिन-दुति समूह तारे ।
मनहुँ ग्यान घन-प्रकास, बीते सब भव-बिलास,
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥२॥

बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
स्रवन, प्रान जीवन धन, मेरे तुम बारे।
मनहुँ बेद-बंदी मुनिबृंद-सूत-मागधादि
बिरुद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥३॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥४॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
तुलसिदास अति अनंद, देखि कै मुखारबिंद,
छूटे श्रमकंद परम मंद द्वंद भारे ॥५॥

(५)

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौ, री।
नख-सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥२॥
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहै संभु-धनु, भूरिभाग सिय-मातु पितौ, री ॥३॥

(६)

दूलह राम, सीय दुलही री!
घन-दामिनि बर-बरन, हरन-मन, सुंदरता नखसिख निबही, री॥१॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥२॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहुँ मही, री ॥३॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल, न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनों, सिला लवनि रति-काम लही, री ॥४॥

(७)

मोको बिधु बदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यहैं भेंट, बलि, जाउ, जहाँ मोहि मिलि लीजै ॥१॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें ॥२॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥३॥
तुलसी रविकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह बिषम हिम पाई ॥४॥

(८)

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी ।
स्याम-गौर, धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥१॥
इन्हहिं बहुत आदरत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री ।
बनिता-बंधु समेत बसे बन, पितु-हित कठिन कलेस सहे, री ॥२॥
बचन परसपर कहति किरातिनि, पुलक गात, जल नयन बहे, री ।
तुलसी प्रभुहिं बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिन पलक लहे री ॥३॥

(९)

आइ रहे जब तें दोउ भाई ।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥१॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई ।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप, त्रयताप नसाई ॥२॥
उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई ।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥३॥
सरित-सरन सरसीरुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई ।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेतु बुलाई ॥४॥
त्रिबिध समीर, नीर झर झरननि, जँह तँह रहे ऋषि कुटी बनाई ।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग-जप-तप मन लाई ॥५॥
भए सब साधु किरात-किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई ।
खग-मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥६॥

कामकेलि-बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल-भुवन-सोभा सकेलि मनों राम-बिपिन बिधि आनि बसाई ॥७॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई ॥८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, संपति - महिमा-मोद-मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लषन रामसिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥९॥

(१०)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषा ऋतु, प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥१॥
चहुँ दिसि बन संपन्न, बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥२॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहु आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥३॥
सिखर परस घनघटहि, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनों उध्यो है दसन धरि धरनी ॥४॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग रचना बिचित्र बिलसति बिराट अंग-अंग ॥५॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि-झरि भरि-भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौं राम-भगति के पाछे ॥६॥

(११)

माई री ! मोहि कोउ न समुझावै।
राम-गवन साँचौ किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥१॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता ॥२॥
दुख न रहै रघुपतिहिं बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान, सुनहु, सखि ! अरुझ परी यहि लेखे ॥३॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जाति बखानी ॥४॥

(१२)

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ ॥१॥
तिलक को बोल्यो, दिये बन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्‌यो समुझि सील-सुभाउ ॥२॥
सीय-रघुबर-लषन बिनु भय भभरि भगी न आउ ।
मोहि बूझि न परत, यातें कौन कठिन कुघाउ ॥३॥
सुनि सुमंत ! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ ॥४॥

(१३)

सुक सों गहवर हिये कहै सारो ।
बीर कीर ! सिय-राम-लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥१॥
पापिनी चेरि, अयानि रानि, नृप हित-अनहित न बिचारो ।
कुलगुरु-सचिव-साधु सोचतु, बिधि को न बसाइ उजारो ? ॥२॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
सुने न बचन करुना करके, जब पुर-परिवार सँभारो ॥३॥
भैया भरत भावते के सँग बन सब लोग सिधारो ।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥४॥
सुनि खग कहत अंब ! मोंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो ।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन-गारो ॥५॥
जीवन जग जानकी-लखन को, मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत, कहा कछु चारो ॥

(१४)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।
लगी न संग चित्रकूटहुतें, ह्याँ कहा जात बह्यो ॥१॥
पति सुरपुर, सिय-राम-लषन बन, मुनि ब्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो ॥२॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ? ॥३॥

(१५)

राघौ एक बार फिरि आवौ ।

ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहिं सिधावौ ॥१॥

जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे ।

क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ॥२॥

भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।

तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ॥३॥

सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सँदेसो ।

तुलसी मोहिं और सबहिनतें इन्ह को बड़ो अँदेसो ॥४॥

(१६)

सुभग सरासन सायक जोरे ।

खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥१॥

पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे ।

स्यामल तनु स्रम-कन राजत, ज्यों नवघन सुधा-सरोवर खोरे ॥२॥

ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे ।

अवलोकत मुख देत परम सुख, लेत सरद-ससि की छबि छोरे ॥३॥

जटा मुकुट सिर, सारस-नयननि गौहैं तकत सुभौंह सकोरे ।

सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे ॥४॥

चितवत चकित कुरंग-कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे ।

तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेम बस थोरैं ॥५॥

(१७)

दोना रुचिर रचे पूरन कंद-मूल, फल-फूल ।

अनुपम अमिय हु तें, अंबक अवलोकत अनुकूल ॥

अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सब आनि कै ।

सुंदर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानि कै ॥

छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पंथ भूपर पानि कै ।

दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम पन पहिचानि कै ॥

(१८)

कपिके चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयननन्हि छायो ॥१॥
कहन चहत सँदेस, नहिं कह्यो, पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख-रायो।
देखि दसा व्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥
मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मानु प्रीतिसों असीस दीन्हीं ह्वै है तिहारोई मन भायो ॥३॥
करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन, मौन ही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ, तुलसी रसना रूखी, ताहीतें परत गायो ॥४॥

(१९)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरन्तर लोचनन-कोन।
'हा' धुनि-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन ॥
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥४॥

(२०)

अबलौं मैं तोसों न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥१॥
बिरह बिषम विष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ॥२॥
सर-सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृषि लहे री ॥३॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल-धीर सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री ॥४॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय सँदेह परिहरु हिय, आइ गये दोउ बीर अहे री ॥५॥

(२१)

जौ हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल-ज्यौं आनि सुधा सिर नावौं ॥१॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥२॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यों, सबहिं को पापु बहावौं ॥३॥
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥४॥

(२२)

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं ।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं ॥१॥
सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं ।
अमित अमल जल-बल परिपूरन, जनु जनमी सिंगार-सविता हैं ॥२॥
धारैं बान, कृत्त धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं ।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं ॥३॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं ।
जे पूजी कौसिक-मख ऋषयनि, जनक-गनप, संकर-गिरिजा हैं ॥४॥
भवधनु दलि जानकी बिबाही, भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं ।
परसुपानि जिन्ह किए महामुनि, जे चितए कबहू न कृपा हैं ॥५॥
जातुधान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं ।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं ॥६॥
दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं ।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहैं ॥७॥
जे भुज बेद-पुरान, शेष-सुक-सारद सहित सनेह सराहैं ।
कलपलताहु की कलपलता बर, कामदुहहु की कामदुहा हैं ॥८॥
सरनागत-आरत-प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं ।
करि आईं, करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं ॥९॥

विनय-पत्रिका

(१)

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥१॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक । कृपा-सिंधु, सुंदर, सब लायक ॥२॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । विद्या-बारिधि, बुद्धि-विधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥४॥

(२)

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे सों सूझ क्यों कहौंगो,
जानौ सबही के मन की ।
करम-बचन-हिये, कहौं न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गाँठि
पानी परे सन की ॥१॥
दूसरो, भरोसो नाहिं, बासना उपासना की, बासव, बिरंचि
सुर-नर-मुनिगन की ।
स्वारथ के साथी मेरे, हाथी स्वान लेवा देई, काहू तो न पीर
रघुबीर ! दीन जनकी ॥२॥
साँप-सभा सावर लबार भये, देव दिब्य, दुसह साँसति कीजै
आगे ही या तन की ॥
साँच परौं, पाऊँ पान, पंच में पन प्रमान, तुलसी चातक आस
राम स्यामघन की ॥३॥

(३)

देव—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥२॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात, गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥३॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै ॥४॥

(४)

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ ॥१॥
सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसौंहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥२॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट उपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥३॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ, परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए को पछिताउ ॥४॥
भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ॥५॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ ॥६॥
कपि-सेवा-बस भये कनौड़े, कह्यौ पवनसुत आउ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तूँ पत्र लिखाउ ॥७॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥८॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ ॥९॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ ॥१०॥

(५)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥१॥

कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ॥३॥

(६)

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥२॥
कुटिल करम लै जाहि मोहि जहँ तहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंड की नाईं ॥३॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिट इक ठाईं ॥४॥

(७)

केसव ! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥
रबिकर-निकर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरे तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

(८)

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय सोक अपारा ॥१॥
सत्रु, मित्र, मध्यस्थ, तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय, अहि हाटक, तृन की नाईं ॥२॥

असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब सनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य तन तैसे ॥३॥
बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥४॥
रघुपति-भगति-बारि छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद्-बिलास जग बूझत बुझत बूझै ॥५॥

(९)

बिस्वास इक राम-नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को ॥१॥
पढ़िबो पर्‌यो न छठी छमत रिगु जजुर अथर्बन साम को।
ब्रत तीरथ तप सुनि सहसमत पचि मरै करै तन छाम को ? ॥२॥
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को।
ग्यान बिराग जोग जप तप, भय लोभ मोह कोह काम को ॥३॥
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्राम को।
बैठें नाम कामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ॥४॥
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर पर-धाम को।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥५॥

(१०)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरन्तर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥२॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥३॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥४॥

(११)

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो ॥१॥

तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि-भरि बेद परोसो ॥२॥
आगम-बिधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो ।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो ॥३॥
काम, क्रोध मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥
बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ॥५॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै, मरो सो ।
रामनाम-बोहित भव-सागर चाहै तरन, तरो सो ॥६॥

(१२)

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ॥१॥
बाँस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चँद मंद मोल बिनु डोला रे ॥२॥
बिषम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥३॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँकर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

(१३)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥१॥
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो ॥२॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥३॥

स्वारथ औ परमारथहू को नहि कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषानन्हि करि कपि कटक तरो ॥४॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाको, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥५॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहिं ते तुलसिहि समुझि परो ॥६॥

(१४)

पन करि हौं हठि आजु तें रामद्वार परयो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निबरयो हौं।
दै दै धक्का जमगन थके, टारे न टरयो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग, नरक निदरि निकरयो हौं ॥२॥
हौं मचला लै छाड़िहौं, जेहि लागि अरयो हौं।
तुम दयालु, बनिहै दिये, बलि, बिलंब न कीजिये, जात गलानि गिरयो हौं।
प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भर्यो हौं।
तौ मन में अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि त्रिलोकि हहरयो हौं ॥३॥

(१५)

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाय बिषयनि लगयो, तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामि सों, चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै।
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित, कलि-कुचालि परिहरिहै।
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को, बिस्वास, प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै ॥४

(१६)

द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहू।
हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख-दोष-दलन-छम, कियो न सँभाषत काहू।

तनु जनतेउ कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिताहू ।
काहे को रोष, दोष काहि धौं, मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाँहू ॥
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माँहू ।
तोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर और निबाहू ॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहू ।
नाम की महिमा, सील नाथ को, मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहुँ, सिहाहुँ ॥४

रामचरितमानस

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिवर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥१॥
कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ॥२॥
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किएँ तिलक गुन गन बस करनी ॥
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती ॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥
जथा सु अंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन ॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भव मोचन ॥

× × ×

जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परसि कुधात सुहाई ॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसें । साक बनिक मनि गुन गन जैसें ॥

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केतु सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥

× × ×

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
जानि कृपा कर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी । चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहि बाल बचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी । जे पर दूषन भूषनधारी ॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥

भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास ।
पैहहि सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास ॥

× × ×

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू । सकल कला सब बिद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक बिधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ॥

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक ॥
प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग ।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग ॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ॥
भगत हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी । गावहिं हरि जस कलि मल हारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥

× × ×

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।

× × ×

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादवँ मास।

× × ×

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरनहि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिहि रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहि नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहि पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहूँ तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥

व्यापक, एक, ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥
सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥

× × ×

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहि जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहि तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥
रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहु काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

× × ×

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहि जगतपति जागे रामु सुजान॥
सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥
बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥
संग सखीं सब सुभग सयानीं । गावहिं गीत मनोहर बानीं ॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गईं मुदित मन गौरि निकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु मागा ॥
एक सखी सिय संगु बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाईं । प्रेम बिबस सीता पहिं पाईं ॥

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन ।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन ॥

देखन बागु कुअँर दुइ आए । बय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥
सुनि हरषीं सब सखी सयानी । सिय हियँ अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली । सुने जे मुनि सँग आए काली ॥
जिन्ह निजरूप मोहिनी डारी । कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू । अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा । हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरंचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेहँ कुमारी ॥

अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडुगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥

नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥
रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥

× × ×

राज कुँअर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा॥
राज समाज बिराजे रूरे। उडुगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रकट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहि कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥
राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मनहरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुद बंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झल काहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥
कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥
कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महा छबि छाए॥
देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेषा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ॥
सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥
× × ×
जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लिवाइ॥
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥

एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहि सीय समतूल ॥

चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तन सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं । बरषि प्रसून अपछरा गाईं ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोह बस सब नर नाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें । नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ॥
सोचहि सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमारि असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नर नाहू । सीय राम कर करै बिबाहू ॥
जगु भल कहिहि भाव सब काहू । हठ कीन्हें अंतहु उर दाहू ॥
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू । बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बन्दीजन जनक बोलाए । बिरदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हियँ हरषु न थोरा ॥

बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल ।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥

नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू । गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासन गवँहि सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा । राज समाज आजु जेइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही । बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ॥
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे । भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं । उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ॥

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिकु अधिकु गरुआइ ॥

भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें । कामी बचन सती मनु जैसें ॥
सब नृप भए जोगु उपहासी । जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी । चले चाप कर बरबस हारी ॥
श्रीहत भए हारि हियँ राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने । बोले बचन रोष जनु साने ॥
दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥

कहहु काहि यहु लाभु न भावा । काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भटमानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ । कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुइँ भाई । तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई ॥
जनक बचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें । रदपट फरकत नयन रिसौंहें ॥

कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥
रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं राउर अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥
लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराज लजाएँ॥
उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥

तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहिं रामु गनेस गोसाईं॥
× × ×
प्रभुहिं चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥
गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साँचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥
तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम पन ठाना। कृपा निधान राम सबु जाना॥
सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसें॥
लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांड॥
दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहि संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरु आई। सुर मुनि बरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभु चाप बड़ बोहित, पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कड़हारू॥
राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥
× × ×
गुरहिं प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥
संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु ।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस ॥

× × ×

तेहि अवसर मुनि सिवधनु भंगा । आयेउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥
देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥
सीस जटा ससि बदनु सुहावा । रिसबस कछुक अरुन होइ आवा ।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधें । धनु सर कर कुठारु कल काँधें ॥
सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप ॥

अयोध्या कांड

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥
दीख मंथरा नगरु बनावा । मंजुल मंगल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलक सुनि भा उर दाहू ॥
करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवनि बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू । नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ पापिनि । छाँड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥
सभय रानि कहि कहसि किन कुसल राम महिपालु ।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥

कत सिख देइ हमहि कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें । जानति हहु बस नाहु हमारें ॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहूँ कहसि घर फोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

कानें खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली । देउँ मागु मनभावत आली ॥
कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायँ पियारी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरें ॥

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥

एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होइ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ॥

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुधि रानि ।।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ।।
सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ।
तसि मति फिरी अहइ जस भाबी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ।।
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ।।
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़िछोली । अवध साढ़ साती तब बोली ।।
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी । रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरिबानी ।।
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ।।
भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ।।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ।।
तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुँह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ।।
चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु पाइ निज बात सँवारी ।।
पठए भरतु भूप ननिअउरें । राम मातु मत जानब रउरें ।।
सेवहिं सकल सवतिं मोहिं नीकें । गरबित भरत मातु बल पीकें ।।
सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट चतुर नहि होइ जनाई ।।
राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी । सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ।।
रचि प्रपंचु भूपहिं अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ।।
यहि कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहिं सोहाइ मोहिं सुठि नीका ।।
आगिलि बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरिसो फलु ओही ।।
रचि रचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधू ।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ।।
भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।
का पूँछहु तुम्ह अबहुँन जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।
भयउ पाखु दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ।।
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें ।।
जौं असत्य कुछ कहब बनाई । तौं बिधि देइहि हमहिं सजाई ।।
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ । तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ।।
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ।।

जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥
कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहिं कौसिला देब।
भरत बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥
कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहिं मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥
अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥
नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करब सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही॥
दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मनऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नीद न जामिनि॥
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥
परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥

× × ×

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥
दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥
मंजु बिलोचनि मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥

पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानिकिहि लाई॥
कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहि टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होत रघुनाथा॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥

बनहित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंस कुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥

राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥

एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥

गुरु श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयंकरु भारी । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥
कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कंदर खोह नदीं नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥

भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल ॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ ॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी । धरि धीरजु उर अवनि कुमारी ॥

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रान पति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन मोही। पिय बियोग सब दुखु जग नाहीं॥

प्रान नाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥
राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानि अहिं प्रान।
दीन बंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥

× × ×

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महि धरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगमकह॥

जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे। बिधि हरि संभुन चावनिहारे॥
तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहिं को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहि भगत भगत उर चंदन॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु सांचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होउ तहँ कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
निदरहिं सरित सिंधु सरभारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुगइ राम बसहु हियँ तासु ॥
प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माँहीं ॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्हतें अधिक गुरहिं जियँजानी । सकल भायँ सेवहिं मनमानी ॥
सबु करि मागहिं एक फलु राम चरित रति होठा ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ ॥
काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहि माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सबके हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पियारे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥
अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥

करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहिं के उर डेरा॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

× × ×

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥
बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरत, नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥
तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आपु करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटलाई। आपु दल बटोरि दोउ भाई॥
जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहिं दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥
ससि गुरतिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमि सुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम को बेन समान॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोइ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु देखी॥
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिसफूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥
छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥

राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करहुँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमदु भाई॥
जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिं न साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूड़हि घटजोनी। सहज छमा बरु छाँड़ै छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहिं भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुनदोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपा निकेतु॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुरधरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिन रघुनाथा॥

अरण्य काण्ड

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥
मोहिं समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया॥

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तें माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिंनिज बल ताकें॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहिं। देख ब्रह्म समान सब पाहीं॥
कहिअ तात सो परम विरागी। तृन सम तीन गुन त्यागी॥

माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥

× × ×

चले राम बन त्यागा सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥
लछिमन देखु बिपिन कर सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृन्दा। मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा॥
हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥
संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

बिरह बिकल बलहीन मोहिं जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मन जात ॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी । बिबिध बितान दिए जनु तानी ॥
कदलि ताल बरधुजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए । जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते । ढोक महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतर लावक पद चर जूथा । बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना । चातक बंदी गुन गन बरना ॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिबिध बयारि बसीठीं आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥
लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्हकै जगलीका ॥
एहि कें एक परमबल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥
लोभ के इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि ।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिवर कहहिं बिचारि ॥

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतर जामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहि भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहि बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिए जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥
सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरुबर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए । अस्तुति कर निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी । नारद मन भा सोच बिसेषी ॥

× × ×

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥

जनहिं मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा । होइ हिम तिन्हहि दहइ सुखमंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
तातें कीन्ह निवारन मुनि में यह जिय जानि ॥

किष्किन्धाकाण्ड

लछिमन देखहु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घनमाहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई । जस थोरेहु धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहि आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड बाद तें लुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका । साधक मन जस मिलें बिबेका ॥

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहि नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरसइ तृन नहि जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहि।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहि॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महिछाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषइ सन्तोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जस करनी॥
जल संकोच बिकल भईं मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥

चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इंदु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरि जन हरिषाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥

लंका काण्ड

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड ॥

× × ×

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।
कहत सबहिं देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी । ससि केसरी गगन बन चारी ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई । उर महँ परी स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा । सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं । तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ॥
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संजुत कर निकर पसारी । जारत बिरहवंत नर नारी ॥

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥
पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रघुपति सुजान ।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान ॥

देखु बिभीषन दच्छिन आसा । घन घमंड दामिनी बिलासा ॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा । होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा ॥

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥
छत्र मेघ डंबर सिरधारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सबके देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥
दसमुख दीखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥
सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिरनाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कलपना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अजधामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

प्रमुख सहायक सामग्री

१	अध्यात्म रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर
२.	कवितावली	गीता प्रेस, गोरखपुर
३.	कल्याण के रामायणांक तथा मानसांक	गीता प्रेस, गोरखपुर
४.	गीतावली	गीता प्रेस, गोरखपुर
५	गोस्वामी तुलसीदास	डा० श्यामसुन्दर दास
६.	घट रामायण	तुलसी साहिब हाथरस वाले
७	तुलसी	पं० रामबहोरी शुक्ल
८.	तुलसी	डा० माताप्रसाद गुप्त
९	तुलसी के चार दल	पं० सद्गुरु शरण अवस्थी
१०	तुलसी ग्रन्थावली भाग १, २, ३	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
११.	तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२.	तुलसीदास	डा० माताप्रसाद गुप्त
१३.	तुलसीदास	पं० चन्द्रबली पांडेय
१४.	तुलसीदास और उनका काव्य	पं० रामनरेश त्रिपाठी
१५	तुलसी साहित्य-रत्नाकर	पं० रामचन्द्र द्विवेदी
१६.	तुलसी-दर्शन	डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
१७.	तुलसी का समन्वयवाद २ भाग	ब्यौहार राजेन्द्र सिंह
१८	तुलसी और उनका युग	डा० राजपति दीक्षित
१९.	श्री तुलसीदास का जीवन चरित	श्री शिवनन्दन सहाय
२०.	तुलसी शब्द-सागर	श्री भोलानाथ तिवारी
२१.	दोहावली	गीता प्रेस से प्रकाशित
२२	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	श्री नाभादास कृत प्रियदास की टीका सहित तथा रूपकलाजी द्वारा संपादित
२३.	भक्तमाल	
२४.	भागवत	
२५.	मानस-पीयूष	
२६.	मानस की रामकथा	पं० परशुराम चतुर्वेदी
२७.	मानस में रामकथा	डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
२८.	मानस कोष	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२९ मानस रहस्य	पं० विजयानन्द त्रिपाठी
३०. मानस-मीमांसा	श्री रजनीकांत शास्त्री
३१. मिश्र बन्धु विनोद	मिश्र बन्धु
३२. मूल गोसाईं चरित	वेणीमाधव दास
३३. रामचरित मानस	गीता प्रेस, गोरखपुर
३४ रामचरित मानस की भूमिका	श्री रामदास गौड़
३५. रामकथा, उद्भव और विकास	डॉ० कामिल बुल्के
३६. रामायण	वाल्मीकि कृत
३७. रत्नावली दोहावली	श्री मुरलीधर चतुर्वेदी कृत
३८. रत्नावली लघु दोहावली	श्री मुरलीधर चतुर्वेदी कृत
३९ विनय पत्रिका	गीता प्रेस, गोरखपुर
४०. विनय पत्रिका	श्री वियोगी हरि की टीका सहित
४१. विनय पीयूष	श्री वियोगी हरि की टीका सहित
४२. विश्व साहित्य में रामचरित मानस भाग १, २	श्री राजबहादुर लमगोड़ा
४३. सूकर क्षेत्र महात्म	कृष्णदास कृत
४४ शिवसिंह सरोज	श्री शिवसिंह सेंगर
४५ हिन्दी साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
४६ हिन्दी नवरत्न	मिश्रबन्धु
४७ हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

अंग्रेजी पुस्तकें

1. Akbar the Great Moghul, V. A. Smith
2. Encyclopaedina of Religion and Ethics
3. Indian Antiquary
4. Jahangirs' India. Moreland. Translation
5 Modern Vernacular litrature of Hindnstan
: Dr. Grierson